ओ३म्

दो शब्द

विचारशील पुरुषो ! यह कुम्भ मेला का अनुपम उपहार आप की सेवा में "हमारा सच्चा सुधारक" के रूप में प्रस्तुत है। इस में उस समय का दिग्दर्शन कराया गया है, जबकि प्रथमबार आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज प्रचारार्थ हरिद्वार में पधारे थे। श्री पूज्य पण्डित मुनीश्वरदेव जी सिद्धान्त शिरोमणि महोपदेशक आ० प्र० नि० सभा पंजाब ने संवाद रूप में इसे रोचक भाषा में लिख कर सर्वसाधारण पर निस्सन्देह एक महान् उपकार किया है। इस शैली से प्रस्तुत विषय अति सुबोध हो गया है। एतदर्थ प्रशंसित पण्डित जी को अति धन्यवाद दिया जाता है।

आशा है नीर-क्षीर विवेकी सज्जन इसे पढ़कर ग्राह्य विचारों को अवश्यमेव हृदयंगम करेंगे और त्याज्य विचारों को त्याग कर जीवन को उज्ज्वल बनाने में संलग्न होंगे। कृपया इस विचारधारा का अधिकाधिक प्रचार कर यश के भागी बनिये।

स्वामी अभयानन्द सरस्वती

सहायक मन्त्री:-सार्व देशिक दयानन्द सन्यास वानप्रस्थ मण्डल ज्वालापुर।

नोट--वैदिक धर्म प्रचार प्रकाशन मण्डल निधि में 'हमारा सच्चा सुधारक' ट्रैक्ट के प्रकाशन में १०१/-एक सौ एक रुपया श्री सेठ एम. सी. गुप्ता एण्ड सन्ज १२ सलाई कट स्ट्रीट बम्बई I ने दान किया आपको अति धन्यवाद दिया जाता है।

वैदिक धर्म प्रचार प्रकाशन निधि में ?

३१) रुपया आर्य समाज २२ सैक्टर चन्डीगढ़

२५) रुपया आर्य समाज खरड़ (अम्बाला)।

ओ३म

ऋषिवर की मान्यताएँ

१—वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

२—ईश्वर ने सृष्टि के कारम्भ में, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदयों में वेद विद्या का प्रकाश किया।

३—वेदों के पढ़ने-पढ़ाने व सुनने सुनाने का मनुष्यमात्र को अधिकार है।

४—वेदों में कोई इतिहास व कथा प्रसंग नहीं है।

५—वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं।

६—एक अद्वितीय ईश्वर ही उपास्य है।

७—ईश्वर अजन्मा, निराकार और सर्वशक्तिमान है।

८—ईश्वर अवतार धारण नहीं करता।

९—पाषाण मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है।

१०—माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पति के लिये पत्नी व पत्नी के लिए उसका पति ही मूर्तिमान पूज्य देवता है।

११—सत्संग, ईश्वरोपासना, सत्याचरण, धर्माचरण, न्यायाचरण परोपकार और यज्ञादि शुभकर्मों का अनुष्ठान आदि ही सच्चे तीर्थ हैं। जलस्थलमय तीर्थ नहीं हैं।

१२—अष्टांगयोग, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, विद्याभ्यास, पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्संग और पुरुषार्थ आदि मुक्ति के साधन हैं।

१३—मुक्तिसान्त कर्मों का फल होने से अनन्तकाल के लिए नहीं होती।

१४—जीव की मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है।

१५—श्राद्ध जीवित पितरों का ही सम्भव है।

१६—हमारा नाम आर्य है।

१७—हिन्दु शब्द अपमान सूचक है।

१८—यवनों और ईसाइयों की शुद्धि आवश्यक है।

* ओ३म् *

हमारा सच्चा सुधारक

सम्वत् १९१७ विक्रमी की बात है, जब महानहिम महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सच्चे गुरु-पथ प्रदर्शक-की खोज में इतस्ततः परिभ्रमण करते हुए भारत की सुप्रसिद्ध नगरी मथुरा में वैदिक महाविद्वान् व्याकरण-सूर्य दण्डी स्वामी प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द सरस्वती जी महाराज की वैदिक पाठशाला में प्रथम बार प्रवेश किया। लगभग तीन वर्ष गुरु-सेवा में निवास कर अष्टाध्यायी और महाभारत का विशेष रूपेण अध्ययन किया और अपनी समस्त शंकाओं का अत्यन्त सन्तोषजनक समाधान पाया। शिक्षा समाप्ति पर गुरु-दक्षिणा के अवसर पर दयानन्द ने आध सेर लौंग जब गुरु महाराज को भेंट किये तब गुरु जी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में आशीर्वाद देते हुए कहा कि "दयानन्द! मैं तुम से तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे उतने दिन आर्यावर्त्त में आर्ष ग्रन्थों का प्रचार और अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे, तथा भारत में वैदिक धर्म की स्थापना के लिये अपने प्राण तक न्योछावर कर दोगे।" इस पर दयानन्द ने नत मस्तिष्क होकर 'तथास्तु' कह दिया। और गुरु जी के आदेशानुसार वैदिक धर्म के प्रचार के लिये कार्यक्षेत्र में अवतरित हुए। जीवन पर्यन्त इसी सत्य सनातन धर्म के प्रचार में संलग्न रहे।

सम्वत् १९२४ वि० के कुम्भ मेला के अवसर पर ऋषि दयानन्द प्रथम बार जब हरिद्वार पधारे, तब उन्होंने सहस्रों धर्म-ध्वजियों साधु, सन्त, महात्माओं द्वारा फैलाये हुये गुरुडम, अन्ध-विश्वास, मिथ्या भ्रम, पाप पाखण्ड और दम्भजाल में बुरी तरह फंस रही इस आर्य जाति की दयनीय दशा को देख कर उनका हृदय द्रवित हो गया। और निश्चय किया कि इस पाखण्ड जाल से जाति को बचाने के लिये घोर परिश्रम के साथ वैदिक धर्म के सत्य स्वरूप को समझाने की आवश्यकता है। इसी हेतु आप ने हरिद्वार के सुप्रसिद्ध स्थान 'सप्तसरोवर' नामक तीर्थ पर अपना डेरा डाल दिया, और वहीं पर 'पाखण्ड खण्डनी पताका' गाड़ दी। अब क्या था, सारे मेले में इसी की धूम और इसी की चर्चा थी, साधु-सन्यासी और सर्व साधारण जनता सारे मेले को छोड़कर इस ओर ही झुकने लगी। ऋषिवर ने उचित अवसर पा कर एकत्रित जनता को सम्बोधित करते हुए कहना आरम्भ किया कि सुनो और विचार करो—

वेदोऽखिलोधर्म मूलम्

वेद ही धर्म का मूल प्रतिपादक है, बिना वेद के धर्म का सत्य स्वरूप नहीं समझा जा सकता। इस लिये वेदों की ओर लौटो।

जनता—साधु जी! वेद क्या बला है? हमने तो वेदों के दर्शन तक नहीं किए। इनमें क्या लिखा है? और किसने इन

की रचना की है ?

साधु दयानन्द—मेरी प्यारी भाली जनता ! वेद ईश्वरीय ज्ञान है, परमकारुणिक भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में मानव मात्र के कल्याण के लिये, धर्माधर्म के सुबोध के लिए, कर्तव्याकर्तव्य के सुविचार के लिए और सत्यासत्य के परिज्ञान के लिए चार ऋषियों—अग्नि, वायु. आदित्य और अंगिरा—की आत्माओं में अन्तर्यामी रूप से इस का उपदेश दिया, जो अद्यावधि गुरु-परम्परा से हमें प्राप्त हो रहा है। जो पवित्र उपदेश वेद और श्रुति के नाम से आज सर्वत्र सुप्रसिद्ध हो रहा है। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त इसको धर्म की जिज्ञासा से परम प्रमाण और स्वतः प्रमाण की दृष्टि से देखते रहे हैं। अतः जब तक आप लोग वेदों की ओर न लौटोगे तब तक आप का कल्याण और उद्धार न हो सकेगा।

जनता—साधु जी ! आप का धन्यवाद। यह विचार आज से पहिले किसी साधु, सन्यासी, पाधा, पण्डित, पुजारी और महात्मा ने नहीं दिया। कृपया यह तो बतलावें कि क्या उन वेदों का पुण्य दर्शन हम भी कर सकते हैं ?

साधुजी—(अपने झोले में से निकाल का) लो भाई। यह चार संहिताएं यह ऋग्वेद है यह यजुर्वेद है, यह देखो सामवेद है और यह अथर्ववेद है, सचमुच यह सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं, भण्डार हैं और हमारा अक्षय कोष हैं। (साधु जी द्वारा पवित्र

चारों वेदों के दर्शन करके कृतार्थ हुई जनता एक स्वरसे बोल उठी ।)

जनता—साधु जी ! आप का धन्यवाद, इस कलियुग में महाभारत के विनाशकारी महायुद्ध के पश्चात आप ने ही प्रथम बार हमें वेदों के दर्शन कराये हैं ! धन्य हो महाराज !! अब कृपया बतलावें कि इन में लिखा क्या है

साधु जी—देखो प्यारे ! इन में उन सभी बातों का सत्य सत्य निरूपण किया गया है, जिन पर आचरण करने से मानव व मानव समाज का उत्थान व कल्याण अनिवार्य रूपेण हो सकता है ।

जनता—भगवन् ! कैसे ?

साधु जी—देखो भैया ! आप लोग, ईश्वर-जो हमारे जीवन का परम-चरम और आदिम-अन्तिम ध्येय-लक्ष्य है, के सत्य स्वरूप को न जान कर इधर उधर पाषाण मूर्ति, वृक्ष, जल, नदी, सूर्य आदि जड़ के पूजन रूप मिथ्या भ्रम-जाल में फंस कर व भटक कर अपने पवित्र जन्म को यूं ही व्यतीत कर रहे हो । यदि आप चाहते हो कि जीवन सफल हो और जीवन लक्ष्य की सिद्धि हो तो ईश्वर के सत्य स्परूप को समझ व जान कर उसी की पूजा उपासना में संलग्न हो जावो ।

जनता—अच्छा साधु जी ! तो क्या यह मन्दिर में प्रतिष्ठित राम, कृष्ण, विष्णु, लक्ष्मी, काली आदि ईश्वर की मूर्तियां नहीं हैं ? क्या यह सब लोग जो इन को ईश्वर मान कर पूजा पर बल देते हैं, यह सारे के सारे क्या अज्ञानी हैं ?

साधु जी—हां, मेरे विचार में सब अज्ञानी हैं । क्योंकि वेद में (सपर्यगाच्छुक्रमकाय मव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्० यजु० ४०--८) परवेश्वर को निराकार सर्वव्यापक और शुद्ध लिखा है । ऐसे निराकार ईश्वर की भला, मूर्ति कैसे संभव हो सकती है । वेद में स्पष्ट उपदेश है (न तस्य प्रतिमा अस्ति० यजु० ३२-३) कि परमेश्वर की प्रतिमा-मूर्ति-नहीं है । ऐसी दशा में जो यह कहते हैं कि 'यह ईश्वर की मूर्ति है, कहो अज्ञानी हैं या नहीं, इस के अतिरिक्त वेद बल पूर्वक शब्दों में कहता है कि (इन्द्र मस्तोत ऋ० ८-८-१) केवल ऐश्वर्यवान् भगवान् की ही स्तुति, प्रार्थना व उपासना करो । यदि उसके स्थान पर किसी अन्य की स्तुति व प्रशंसा करोगे तो दुःखों में फंस जाओगे । जैसा कि वेद कहता है कि (माचिदन्यद् विशंसत सखायो मारिषण्यत) इस लिये ईश्वर के स्थान पर अन्य जड़ आदि की व राम, कृष्ण आदि चेतन व्यक्तियों की मूर्तियाँ बनाकर पूजना सर्वथा नास्तिकपन है और वेद विरुद्ध कर्म है ।

जनता—धन्य हो महाराज ! धन्य हो !! हम क्या पता था कि पाषाणादि की मूर्ति बना कर पूजना नास्तिकता है और वेद विरुद्ध क्रिया है । तो फिर क्या भगवन् । किसी प्रकार की मूर्ति पूजा वेदोक्त नहीं है ?

साधु जी—क्यों नहीं, है ।

जनता—महाराज ! वह कौन सी है ?

साधु जी—सुनिये भाई ! जरा ध्यान से, यजु० १६/१५ में लिखा है कि (मानो वधीः पितरं मोत मातरम) अर्थात माता व पिता को कभी मत सताओ। इनकी सदा आज्ञा का पालन करो, सन्तान के लिये यह मूर्तिमात पूजनीय देव हैं। वेद के आधार पर ही उपनिषत्कार ऋषियों ने—मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव—आदि आदर्श वाक्य लिखकर जीवित मूर्तिमान देवों की पूजा, मान सत्कार आदि करने की विधि का समर्थन किया है। अतः माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पत्नी के लिये पति तथा पति के लिये पत्नी पूजनीय देवता हैं। इन्हीं के संग से विद्या, सुशिक्षा, सत्योपदेश की प्राप्ति व सन्तानों का जन्म, लालन व पालन होता है। इन की सेवा-पूजा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर नरकगामी हैं।

जनता—इस सत्योपदेश को सुनकर मुग्ध हुई जनता बोली कि भगवन्। यदि यही मूर्ति पूजा है, तब तो हम पाषाणादि मूर्ति पूजा को त्याग कर आज से सच्ची वेदोक्त पूजा में संलग्न हो जायेंगे, और इसी कल्याणकारिणी वेदोक्त मूर्ति पूजा का सर्वत्र यथाशक्ति प्रचार करेंगे, आप का हार्दिक धन्यवाद है। आप ने हज़ारों वर्षों के पश्चात यह हमें दिव्य आलोक प्रदान किया। अच्छा अब यह बतलाने की कृपा करें कि हम किस नाम से प्रभु का स्मरण व जाप करें ?

साधु जी । देखो, मेरे भाई ! जाप व स्मरण तो पवित्र प्रभु के 'ओ३म्' नाम का ही करना चाहिये ।

जनता–भगवन ! यह जो पण्डे पुजारी कहते हैं कि सीताराम जपो, राधेश्याम जपो, क्या यह मिथ्या है ? हमें एक साधु ने जपने के लिये यह मन्त्र भी दिया था कि–

हरे रामा हरे रामा, रामा रामा हरे हरे ।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे हरे ॥

साधु जी–यह सब मिथ्या कपोल कल्पित जाप हैं, देखो, वेद में (ओ३म् क्रतो स्मर० यजु० ४०/१५) यह स्पष्ट उपदेश है कि हे जीव । तू सदा 'ओ३म्' नाम जो परमेश्वर का सर्वोत्तम और निज नाम है—का स्मरण किया कर । यह 'ओ३म्' नाम परमेश्वर का वाचक है, (तस्य वाचकः प्रणयः) योगसूत्र इस लिए (तज्जपस्तदर्थ भावनम । योगसूत्र) के अनुसार अर्थ पूर्वक उसी ओ३म् का जाप व स्मरण ही विहित है अन्य नही । इसके अतिरिक्त श्री रामचन्द्र जी व श्री कृष्णचन्द्र जी आदि महापुरुष भी वैदिक विद्वान थे, वे कभी वेद विरुद्ध आचरण नहीं करते थे, आप उन की रामायण व गीता अथवा महाभारत को ही पढ़ कर देखें तो पता चल जायगा कि वह किस की उपासना करते थे । सुनिये, जब श्रीराम जी लक्ष्मण जी के साथ महर्षि विश्वामित्र जी के आश्रम में शस्त्रास्त्र की शिक्षा पा रहे थे, तब श्री विश्वामित्र मुनि प्रातः ब्रह्ममुहूर्त्त में उन को जगाते हुए कहा करते थे :-

कौशल्या सुप्रजाराम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल ! कर्तव्यं दैवमान्हिकम् ॥
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥

इससे सिद्ध है कि महाराजा राम भी प्रतिदिन प्रातः 'परमजप' अर्थात् प्रणव-ओंकार का ही जप किया करते थे। और वनवास के दिनों में भी राम, लक्ष्मण और सीता तीनों मिल कर मौन सन्ध्या के अनुष्ठान द्वारा प्रभु की उपासना करते थे। जैसा कि रामायण का लेख है:—

वाग्यतास्तेत्रयः सन्ध्यां समुपासन्त संहिताः।

कहिए अब भी कोई सन्देह शेष है ? अब जरा श्रीकृष्ण जी के विषय में भी सुन लो। गीता में आता है कि जब श्री अर्जुन ने महाराज से पूछा कि (वेद्य) अर्थात् जानने योग्य तत्व क्या हैं ? तो इस पर श्री कृष्ण जी ने कहा कि :—

वेद्यं पवित्र मोंकार ऋक्साम यजुरेव च। ९।१७

अर्थात् ईश्वर को मुख्य रूपेण जानना चाहिए, जो ओंकार पद वाच्य है, और साथ ही उसकी पवित्र वेदवाणी को भी, जो ऋग्-यजु-साम और अथर्व के नाम सुप्रसिद्ध हैं—जानने योग्य है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी लेख मिलता है कि वह सन्ध्या के इतने प्रेमी थे कि युद्धकाल में सन्ध्या के समय कभी सन्ध्या नहीं छोड़ते थे ! अस्तु अच्छा भाई ! जरा यह तो बतलाओ कि श्रीराम श्रीकृष्ण के पूर्वज माता, पिता, पितामह और प्रपितामह आदि

वशिष्ठ, विश्वामित्र और अत्रि आदि ऋषि महात्मा किस का जाप थे? निस्सन्देह वे सब प्रणव-ओ३म् का जाप करते थे और सन्ध्यादि नित्य कर्मों द्वारा एक ईश्वर का ही आराधन करते थे। क्योंकि उस समय वैदिकविधान ही सर्वत्र प्रचलित था। और जिस मन्त्र का जपना आप लोगों को आधुनिक साधु-सन्त बतलाते हैं, भाई! सत्य जानो वह भी पवित्र वेदों में नहीं है, सर्वथा कपोल कल्पित है, मन घड़न्त है। और फिर आश्चर्य की बात यह है कि वे राम, कृष्ण पुरुष थे, मन्त्र में उन बेचारों को इन भले मानसों ने 'रामा-कृष्णा' कह कर 'स्त्री' बना दिया! इसलिए ऐसे अशुद्ध-असंगत वचनों को मन्त्र कहना व मानना भी भूल है। देखो 'मन्त्र' तो 'विचार' का नाम है, जिसके बार बार उच्चारण से मन पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। ऐसे मन्त्र तो पवित्र वेदों में ही मिल सकते हैं, अन्यत्र नहीं। आशा है आप लोग अब सन्तुष्ट हो गये होंगे।

जनता—वाह, वाह महाराज। आपने तो हमारा कल्याण कर दिया, हम बड़े भूले हुए थे, आप का जितना भी धन्यवाद किया जावे, महाराज! कम है। अब कृपया बतलावें कि क्या कोई ईश्वर का अवतार भी है जिसकी सहायता से हम लोग तर सकेंगे?

साधु जी—देखो भैया! ईश्वर को वेद में (अज एक पाद्) लिखा है अर्थात् यह अजन्मा है। और सर्व व्यापक है, जो

सर्वव्यापक है वह कहां नहीं जो कहीं से आयेगा। एक देशी का का ही आना-जाना व गर्भाशय की यातनाओं का भोगना सम्भव है, सर्वव्यापक-सर्व देशी का तो आना-जाना युक्ति व तर्कहीन ही है। इससे सिद्ध है ईश्वर का कोई अवतार नहीं। तरने के लिये तो केवल एक प्रभु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना ही है, जैसा कि पवित्र यजुर्वेद अ० ३१ म० १८ में कहा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय।

जनता—तो क्या महाराज ! ये हमारे गुरुलोग यूं ही कहते हैं कि राम, कृष्ण आदि अवतार थे, ये पृथ्वी पर अत्याचारों को मिटाने के लिए, भक्तों की रक्षा के लिये समय-समय पर आते हैं।

साधु जी—हां यह यूँ ही कहते हैं। इसमें तिल मात्र भी सत्यता नहीं है। देखो यदि यह सत्य बात होती तो अब कितने *अत्याचार हो रहे हैं, लाखों की संख्या में अनाथ बिलख रहे हैं,* लाखों विधवाएँ दुःख के आंसु बहा रही हैं। सहस्रों गौओं की गर्दन पर सूर्य निकलने से पहिले २ तेज छुरा चल जाता है। प्रतिदिन सहस्रों शिखासूत्र धारी, राम-कृष्ण के नाम लेवा गाय और गायत्री के पुजारी विधर्मी होकर यवनों और ईसाइयों की भेड़ों में प्रवेश कर रहे हैं। क्या यह कम अत्याचार हैं। रावण अत्याचार को मिटाने के लिए राम अवतार लेकर आए, कंस के अत्याचार को मिटने के लिए कृष्ण अवतार लेकर आए, तो अब इन भीषण और कंपा देने वाले अत्याचारों को मिटाने के लिए

कोई क्यों नहीं आता। इसलिए यह सब पोप जी का पाखण्ड और दम्भ है। मानव और मानव समाज को अन्ध विश्वास के गहरे गढ़े में गिरा कर सदा के लिये पुरुषार्थ हीन बनाता है। इस विचार ने—कि भगवान् अवतार लेकर स्व ' आर्थेंगे, पाप का का नाश करेंगे, भक्तों की लाज बचायेंगे ही—जाति को रसातल में पहुंचाया है। इसलिए अवतारवाद पर भरोसा रखकर मेरे भोले भाइयों। पुरुषार्थ धर्म को मत त्यागो। पुरुषार्थ से तुम सब कुछ सिद्ध कर सकते हो। (इन्द्र इच्चरतः सखा) भगवान् भी पुरुषार्थी का मित्र है, कर्महीन का नहीं। अतः अवतार की कल्पना भी अवैदिक ही है।

जनता—साधु जी! आप का धन्यवाद। आप की कृपा से हमारा यह भ्रम दूर हुआ। अब जब आप ईश्वर को 'सर्व शक्तिमान्' कहते हैं और मानते हैं तो वह शरीर धारण क्यों नहीं कर सकता?

साधु जी—देखो भाई! आप ने 'सर्व शक्तिमान्' के सत्यार्थ को नहीं समझा, अतएव भ्रम में पड़ कर आप यह भी कहोगे कि यदि भगवान् सर्वशक्तिमान् है तो हमारे घर में झाड़ू क्यों नहीं लगाता, रोटी क्यों नहीं बनाता, आकर कपड़े क्यों नहीं धोता। अब सोचने की बात है, क्या भगवान् तुम्हारा नौकर है जो तुम्हारे जैसे आलसियों के काम-काज के लिए शरीर धारण करता फिरेगा! अरे भोले भाइयों! जरा बुद्धि से विचार करो, क्या

यह झाड़ू आदि देना ईश्वर का काम है ! यह काम तो जीवों के हैं। अब 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ सुनो, वह यह है कि 'परमात्मा बिना किसी की सहायता के अपने सब कार्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और जीवों के कर्मों की फल व्यवस्थादि-पूर्ण कर सकता है।' अतः ईश्वर के नियम सत्य है, उनके विरुद्धि वह नहीं कर सकता।

जनता—भगवन् ! आप के उपदेश से हमारी शंका मिट गई। अब तो यह जानने की इच्छा है कि क्या वेदों में अग्नि, वायु, इन्द्र, मित्र वरुण आदि की उपासना का विधान नहीं है? हम तो यही सुनते हैं कि वेदों में बहु देवता पूजा का विधान है। क्या यह मिथ्या है ?

साधु जी—हां भाई। बिल्कुल मिथ्या है। वेदों में केवल एक अद्वितीय ईश्वर की पूजा व उपासना का विधान है। जिन अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि शब्दों को देख कर वेदों में बहु देवता पूजा का भ्रम होता है वह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि वेदों में उपासना प्रकरण में अग्नि आदि शब्दों का मुख्यार्थ परमेश्वर ही से है। जैसा की वेद स्वयं कहता है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायु स्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।

यजु ३२।१ से स्पष्ट है कि यह नाम परमेश्वर के गौणिक-प्रकरणानुसार ईश्वर के ही बोधक हैं। ऐसा ही ऋ १।१६४।४६ में भी स्पष्ट मिलता है।

एकंसद् विप्रा बहुधा वदंति०

अर्थात् ईश्वर एक है नीर क्षीर विवेकीजन अग्नि आदि अनेक नामों से भी उसी एक का कथन करते हैं। इस लिए याद रक्खो, (एक एव नमस्यो विष्वीड्यः) एक ही ईश्वर उपास्य और नमस्य है।

जनता—महाराज ! यह भ्रम भी दूर हुआ। अब कृपया यह बतलाने का कष्ट कीजिएगा कि ब्रह्म, विष्णु और शिव क्या भिन्न २ देवता या ईश्वर है ?

साधु जी—नहीं भैया नहीं। यह भी परमेश्वर के विशेष २ गुण कर्म व स्वाभाव के बोधक नाम हैं। सर्वजगत् निर्माता होने से विष्णु और सबका कल्याण कर्ता होने से शिव और सबसे बड़ा होने से ब्रह्मा कहलाता है। देखो जब भिन्न २ देवता ईष्ट व उपास्य हो जाते हैं तब मानव समाज में भी भेद-विरोध पड़ जाता है जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जो शिव को ही अपना ईश्वर मानते हैं उनकी विष्णु को ईश्वर मानने वालों के प्रति क्या भावना है, जरा देखिए वे कहते हैं कि :—

विष्णु दर्शन मात्रेण शिव द्रोहः प्रजायते।
शिव द्रोहान्न संदहो नरकंयाति दारुणम् ॥
तस्माद् विष्णु नामापिन वक्तव्यं कदाचन ॥

जब विष्णु के भक्तों कोपता चला कि शैवों की हमारे प्रति ऐसी निकृष्ट भावना है, तब उन्होंने भी कहा कि :—

वासुदेवाग्रत श्चपि रुद्र माहात्म्य कीर्तनम् ।
यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत् ॥

अतः—ऊर्ध्वं पुण्ड्रविहीनस्त शमशानं सदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखंते पामादित्यम वलोकयेत् ॥
यथेमां वाच कल्यणी मावदानि जनेभ्यः । यजु २६।२

जनता—(मुग्ध होकर) महाराज ! आपने तो हमारे मिथ्या विश्वास व भ्रम को सदा के लिए मिटा दिया है । आप का धन्यवाद करते हैं । अच्छा साधु जी ! जिन पवित्र वेदों के ज्ञान प्रकाश द्वारा आप हमारे अज्ञानान्धकार का निवारण कर रहे हैं । क्या हम लोग भी उन पवित्र वेदों के पढ़ने व सुनने का अधिकार रखते हैं ?

साधु जी—क्यों नहीं, मानव मात्र को वेद के पढ़ने-सुनने का समान अधिकार है । ईश्वर प्रदत्त जल, वायु, पृथ्वी, सूर्य, वनस्पति आदि पर जब सब मनुष्यों का समान अधिकार है, तो ईश्वर प्रदत्त वेदों पर क्यों नहीं । क्या वेद भगवान् की देन नहीं हैं ? देखो वेद में स्पष्ट उपदेश है कि

यथेमां वांच कल्यणी मावदानि जनेभ्यः । यजु २६।२

परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो । कहो भाई ! ऐसे प्रमाण के होते हुए भी कोई आप को वेदाधिकार से वंचित कर सकता है ?

जनता—महाराज! क्या करें, ब्राह्मण लोग हमें शूद्र समझते हैं, हमारे हाथ की रोटी तक नहीं खाते, और कहते हैं कि (स्त्री शूद्रौ नाधीयाता मितिश्रुतः) अर्थात् श्रुति कहती है कि स्त्री और शूद्र को वेद के पढ़ने-सुनने का अधिकार नहीं है क्या यह सत्य है ?

साधु जी—बिल्कुल नहीं, उक्त श्रुति किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं है। पोपों की कपोल कल्पना है। वेद का प्रमाण ही सत्य है, जहां निषेध है, उसका अभिप्राय यह है कि जिस को पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूढ़ होने से शूद्र कहाता है, उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हैं यह भी उनकी मूर्खता है, क्योंकि अथर्व ११/३/१८ वेद में स्पष्ट है कि (ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्) अर्थात् ब्रह्मचर्य सेवन पूर्वक वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके युवावस्था में अपने तुल्य युवा पति को प्राप्त होवे। अतः स्त्रियों को पठन-पाठन का पूर्णअधिकार है। इसके अतिरिक्त श्रौत सूत्रों में (इमं मंत्रं पत्नी पठेत) वाक्य मिलता है, जो वेदादि शास्त्रों का न पढ़ी होवे तो यज्ञादि में मंत्र कैसे बोल सके, और देखो भाई! भारत वर्ष की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी, सुलभा आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थी जिनके शास्त्रार्थ भी याज्ञवल्क्य और जनक के साथ हुए थे। मध्य काल में भी

मण्डनमिश्र की पत्नी ने श्रीशंकराचार्य के साथ शास्त्रर्थ किया था, जिसमें प्रमाण रुपेण वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण दिए गए थे अन्ततः शंकराचार्य पराजित हो गये थे। क्या यप सम्वाद मिथ्या है ? अतः स्त्री को वेद के पठन-पाठन का पूर्णाधिकार है।

जनता—धन्यवाद है महाराज, आपका। जिन्होंने हम लोगों को भी वेदाधियारी सिद्ध किया।

साधु जी–क्यों भाई ! क्या बात हैं ?

जनता–महाराज ! हम तो जन्म से नीच हैं, शूद्र हैं। भला हमें यह अधिकार कौन देता था, हमारे लिये तो यह सुना है लिखा हुआ है कि यदि शूद्र वेद मन्त्रों को सुने तो कान में सीसा पिघला कर डाल दे, यदि मन्त्रोच्चारण करे तो जीभ काट दे और यदि वेद पर आचरण करे तो शरीर चीर दे। भगवन् ! यह तो आप ही एक निराले साधु हैं, जो नीचों के लिए वेदाधिकार सिद्ध कर रहे हैं।

साधु जी–देखो भाई ! यह भी आप लोगों की भूल है जो आप अपने को जन्मना नीच समझते हैं, जन्म से सचमुच न कोई नीच है और न कोई ऊंच, न कोई ब्राह्मण है और न कोई शूद। सिद्धान्ततः गुण, कर्म और स्वभाव से ही यह सब वर्णों की व्यवस्था है। देखो यजु० ३१/११ में आता है कि–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरुतदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

अर्थात् जो मुख के सदृश ज्ञान-प्रधान लोग हैं वह ब्राह्मण, जो शूरवीर हैं, वह क्षत्रिय, जो ऊरु के बल से सब देशों में व्यापार्थ आवें-जावें वह वैश्य और जो मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र कहा जाता है। अपने २ स्थान पर सब श्रेष्ठ हैं। किसी को ऊँच व नीच नहीं कहा जा सकता। यदि शूद्र ब्राह्मणादि के काम करता है तो वह ब्राह्मणादि और यदि ब्राह्मणादि, शूद्र के काम करते हैं, तो विधानतः वह शूद्र हो जाते हैं। देखिये मनु महाराज अपने धर्म शास्त्र १०/६६ में लिखते हैं कि—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।

इसके अतिरिक्त आप स्तम्ब सूत्रों में भी आता है कि—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णं मापद्यते।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते।

इस लिये धर्माचरण से नीच-ऊँच और अधर्माचरण से ऊँच, नीच वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं, भाई! आप लोग तो विचारवान् हैं जो आप के पण्डे-पुजारी मांस, मदिरा, भंग, दुराचार और जूआ आदि दुर्व्यसनों में फंसे हुए वेद विरुद्ध प्रचार करते हैं, सच जानो वही नीच हैं, शूद्र हैं। आप लोग गुण ग्राही हैं, सत्य और असत्य के भेद को जानकर सत्य मार्ग को अपनाने के लिये कटिबद्ध हैं, अतः आप श्रेष्ठ हैं कभी भी अपने आप को नीच न समझो। अपने आचरणों को वेदानुकूल धर्मानुकूल बनाओ।

जनता—भगवन्! आज ही आप के द्वारा हम ने यह जाना कि जन्म से कोई ऊंच नीच नहीं है, गुण कर्म स्वभावानुसार यह

सब वर्ण व्यवस्था है। हम तो अज्ञान कूप में गिर कर डूब रहे थे। साधु जी ! आप का धन्यवाद है, आपने सचमुच हमें बचा दिया। अब तो आप हमें मुक्ति का मार्ग बतलायें। क्योंकि हमारे पाधा-पुरोहित कहते हैं कि गंगा स्नान, तीर्थ यात्रा, एकादशी व्रत तिलक, रुद्राक्षमाला धारण आदि से सब पाप दूर होते हैं और मुक्ति मिलती है, हम लोग उन्हीं के कथन पर यहां मुक्ति के लिए आए हुए हैं। क्या यह मार्ग सत्य है ?

साधु जी—नितान्त मिथ्या है, और सर्वथा भ्रमपूर्ण है। याद रक्खो किया हुआ शुभाशुभ कर्म, बिना फल भोगे कभी नष्ट नहीं होता। भले ही आयु भर गंगा स्नान करते रहो और भले ही तीर्थ यात्रा पर सहस्रों रुपया व्यय करते रहो इससे न पाप नष्ट होगा और न मुक्ति मिलेगी। भाई ! पापों से बचने का तो एक ही मार्ग है कि आप लोग भगवान् को घट-घट वासी और अपने अंग संग अनुभव करें और विश्वास करें कि वह सर्वान्तर्यामी हमारी प्रत्येक चेष्टा-कुचेष्टा व भलाई बुराई को जानता व देखता है, हम उसके न्याय नियम व दण्ड विधान से किसी भी अवस्था में न बच सकेंगे। अतः हमें सुख प्राप्ति के लिए शुभ कर्मों का ही अनुष्ठान करना चाहिए। इसके साथ साथ ईश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्य भाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपात रहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, और पूर्वोक्त प्रकार परमेश्वर की स्तुति,

प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपात रहित न्याय धर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति प्राप्त होती है। (नान्यः पन्था विद्यतेअपनाय) यदि आप लोगों को वस्तुतः मुक्ति की अभिलाषा है तो इसी वेदोक्त सत्य मार्ग पर चलो। अन्य मिथ्याभ्रमों में फंस कर जन्म को व्यर्थ मत गंवावो।

जनता—बहुत अच्छा, साधु जी! यह तो हमने समझ लिया कि गंगा स्नानादि से शरीर की मल तो साफ़ हो सकती है, अन्तरात्मा पर चढ़ी पापों की मल किसी भी अवस्था में न धुल सकेगी परन्तु यह तो बतलादें कि हम साधारण बुद्धि के लोगों के लिए कोई सरल तीर्थ यात्रा भी है, जिस से हम तर सकें और सुख के भागी बन सकें।

साधु जी—है भाई! है। प्रथम सुनो कि तीर्थ यात्रा कहते किसे हैं। देखो तीर्थ शब्द का अर्थ है—तराने का साधन वह दो प्रकार के हैं, प्रथम नौका जल-यान आदि जिससे नदी समुद्रादि को तरा जा सकता है, द्वितीय वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढाना; धार्मिक जनों का संग, परोपकार, धर्माचरण योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता, आचार्य, अतिथि, माता-पिता की

सेवा परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना उपासना, शान्ति, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभ गुणकर्म दुःखों से तराने वाले होने से तीर्थ कहाते हैं। जलस्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबा कर मारने वाले हैं। अतः यदि आप लोग भव-सागर से तरना चाहते हो तो इन्ही सच्चे वैदिक तीर्थों में नित्य स्नान किया करो हरीद्वार, काशी, गया, प्रयाग और कुरुक्षेत्रादि की तीर्थयात्रा से कोई लाभ न होगा।

जनता—(परस्पर–लो भाई लो, अब तक हम यूं हीं भटकते रहे) साधु जी! आपका धन्यवाद। आपने आज हमें सच्चे तीर्थों या बोध कराया। इन तीर्थों में तो हम घर बैठे ही स्नान कर अन्तरात्मा की पाप-मल धो सकते हैं। वाह, साधु जी! आप ने तो हमारे ज्ञान-चक्षु ही खोल दिए। भगवन्! आप के सत्संग से हम सब को अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ, हमारी शंकाओं का समाधान हुआ, विविध भ्रमों का मूलोन्मूलन हुआ अन्ध विश्वास और अविद्या तिमिर मिटा, हम भूले-भटकों को सीधा वेद मार्ग मिला, जीवन-सुधार की ओर प्रवृत्त होने की शुभ प्रेरणा मिली, 'पोप और पाखण्ड-पाश से दूर रहने' की ज्ञान पूर्वक तर्क शक्ति मिली, वेद ही हमारा अक्षय कोष है, हम सब इस के समान रूप से उपभोक्ता हैं। हमें इस वेद-सागर से दिव्य ज्ञान मुक्ता चुनने का पूर्णाधिकार है, हम भगवान् के अमृतपुत्र हैं। हम में कोई जन्म से ऊंच-नीच बड़ा-छोटा व ब्राह्मण-शूद्र नहीं है, उत्तमाचरण

से बड़ा और अधमाचरण से छोटा बनता है इत्यादि सब बातों का यथार्थ बोध मिला। कहां तक कहें, महाराज ! हमने आप पर ईंट-पत्थर बरसाये, आप को गालियां दीं, आपका भारी अपमान किया, आप को कलंकित करने के लिए अनेक कुचक्र चलाये, आप का जीवन समाप्त करने के लिए तलवार से आक्रमण किया भोजन, पान व मिष्टान में विष दिया, नदी में डुबा कर मारने का प्रयत्न किया, क्या-क्या नहीं किया सब करतूतें कीं, परन्तु आप ने अपनी सच्ची साधुता को नहीं त्यागा, निरन्तर जनता-जनार्दन की सेवा में संलग्न रह कर सच्चे अर्थों में अपने गुरु के ऋण से उऋण होने का ही सत्प्रयत्न किया। वेद-प्रचार को ही सुधार का सच्चा साधन समझ कर उसका जन-,जन, घर-घर, और नगर-नगर तक दिव्य सन्देश सुनाने व पहुंचाने का जीवन भर प्रयत्न किया, आपने प्रत्येक क्षेत्र में सुधार किया अनाथों के कष्ट हरे, बिलखती विधवाओं की पुकार सुनी, गाय आदि उपकारक पशुओं की रक्षार्थ महा प्रयत्न किया। यत्र-तत्र-सर्वत्र शास्त्रार्थ व भाषणों द्वारा पण्डितंमन्यों का मान मर्दन कर वेद मत का मण्डन और अवैदिक मतों का खण्डन किया और वेद भाष्य द्वारा वेद की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। कहां तक आप के गुणों और कार्यों का कथन किया जाये, भगवन् ! हमारी वाणी वर्णन करने और लेखनी लिखने में सर्वथा असमर्थ है। आकाश के तारे और समुद्र के कतरे तो गिने जा सकते हैं

परन्तु आप के साधु जी !! उपकार नहीं गिने जा सकते । अच्छा महात्मा जी ! कृपया हमारी उन करतूतों को भुला दीजिएगा जो हमने अज्ञानता के कारण आप के प्रति की हैं । आप दयालु साधु हैं, आप हमें आशीर्वाद दें, जिससे हमारा कल्याण हो ।

साधु जी—बड़े हर्ष का विषय है कि आप सत्संगी लोगों के सन्मुख मैंने जो वैदिक विशुद्ध भाव अपने शुद्ध भाव से रखे, आप ने उन्हें हृदयंगम किया, और उन पर भावी जीवन में आचरण करने का सुदृढ़ निश्चय किया, एतदर्थ भगवान् का धन्यवाद और आप सब का भी धन्यवाद है । तो क्या अब आप लोग वापिस अपने घरों को लौटना चाहते हैं ।

जनता—हां महाराज ! बहुत दिन हो गए, बाल बच्चे याद कर रहे होंगे । पर इस बात की बड़ी खुशी है कि यहां आकर आप के सत्संग से हम सब का समय सार्थक बीता और यात्रा सफल हुई । हम लोग पंजाब के निवासी हैं । पंजाब वीर भूमि प्रसिद्ध है, कभी अवसर मिले तो अवश्य दर्शनों से कृतार्थ कीजियेगा । बस अब तो आप आशीर्वाद दीजिएगा ।

साधु जी—अच्छा भाई ! अब तो आप ऐसा लगता है कि बिल्कुल जाने को ही तैयार बैठे हैं । पर मैं चाहता हूँ कि ५-७ मिनट में कुछेक आवश्यक बातें और भी जो बड़ी महत्व पूर्ण हैं जल्दी २ आप लोगों के सम्मुख कह दूं कहिए, आप लोग सुनने को तैयार हैं ?

जनता—भगवन् ! ५–७ मिनट की कोई बात नहीं, आप अमृतमय वचनों को तो सुनने को सदा ही चित्त चाहता है। कुछ महाराज ! घरेलु धन्धे ऐसे पीछे लगे हुए हैं। जिन निर्वाहार्थ अनिवार्यतः करना ही होता है। बस यही बात है और कुछ नहीं। अच्छा साधु जी ! अब कृपया आप अप अन्तिम विचार हमें दीजिएगा।

साधु जी—मेरे प्यारे ! ज़रा ध्यान से सुनो,

१–यदि कोई तुम से पूछे कि तुम्हारा नाम क्या है औ तुम कौन हो। तो आप लोगों ने एक स्वर से कहना कि हमार नाम 'आर्य' है ! और हम आर्य हैं। और 'हिन्दू' शब्द को अपने लिए अपमान सूचक समझो यवन मलेच्छों ने चिढ़ाने के लिए यह हमारे साथ जोड़ा था, इस शब्द के अर्थ भी दीन हीन और मलीन हैं।

२–यदि कोई पूछे कि आप का धर्म क्या है, तो कहो कि हमारा धर्म वैदिक धर्म है।

३–यदि कोई तुम से पूछे कि तुम्हारा इष्ट-उपास्य देव कौनसा है तो कहो कि एक सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर।

४–यदि कोई पूछे कि बतलाओ कितने पदार्थ नित्य और अनादि हैं तो कहो कि तीन-ईश्वर, जीव और प्रकृति।

५–यदि कोई पूछे कि क्या जीव मुक्ति से लौटता है या नहीं ? तो कहो कि [illegible] कभी नहीं हो

सकता, चूंकि साधक-कर्म सीमित और सान्त हैं, अतः उन का फल 'मुक्ति' भी अनन्त काल के लिए नहीं हो सकती, नियमतः पुनरावृत्ति अनिवार्य है।

६–यदि कोई पूछे कि क्या जन्म यही एक ही है ? तो कहो कि नहीं जन्म तीन हैं पूर्व, वर्तमान और पर।

७–यदि कोई तुमसे पूछे कि तुम्हारे नित्य कर्म कितने और कौन २ से हैं ? तो कहो कि वह ५ हैं ब्रह्मयज्ञ-ईश्वरोपासना और वेद का स्वाध्याय। देवयज्ञ अग्निहोत्र और विद्वानों का संग। पितृयज्ञ-माता पिता आदि बड़े बूढ़ों की सेवा। अतिथियज्ञ-धार्मिक परोपकारी सज्जनों का सत्कार भूतयज्ञ परोपकारी प्राणी मात्र के प्रति सहानुभूति रखना और बलि देना।

८–यदि कोई पूछे कि तुम्हारे पितर कौन से हैं ? तो कहो कि हमारे जीवित माता पिता और बड़े बूढ़े। मृतकों की पितर संज्ञा सर्वथा असंगत है।

९–यदि कोई पूछे कि स्वर्ग-नरक क्या है, और कहां है ? तो कहो कि सुख व सुख विशेष की सामग्री का नाम स्वर्ग और दुःख की अवस्था का नाम 'नरक' है। और यह यहीं पर हैं, कहीं अन्यत्र इन का विशेष स्थान नहीं।

१०–यदि कोई पूछे कि क्या यज्ञों में पशु-बलि का विधान है। तो कहो कि बिल्कुल नहीं, यज्ञ का नाम 'अध्वर' हैं, अर्थात्

जिसमें नाम को भी हिंसा न हो यज्ञादि में पशु-बलि का विधान कपोल कल्पित है, और पोप-लीला है।

११—यदि कोई पूछे कि गोमेध आदि का फिर क्या अर्थ होगा। तो कहो कि गोमेध-अन्न, इन्द्रिय, किरण पृथ्वी आदि को पवित्र रखना। अश्वमेध-राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देने वाला यजमान् और अग्नि में घी आदि का होम करना और नरमेध—जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह करना। अजामेध—बीजों-वनस्पतियों और पुराने चावलों से होम करना कहाता है। पशु-बलि वाम मार्ग है।

१२—यदि कोई पूछे कि परस्पर 'अभिवादन' के समय किस शब्द का प्रयोग करना ठीक है? तो कहो कि 'नमस्ते' जिसका भाव है परस्पर का सत्कार करना है। और यही वैदिक शब्द है, अन्य जय सीताराम, जय राधेश्याम और जय हिन्द आदि सब अवैदिक रीतियां हैं, और परस्पर विषमता को पैदा करने वाली हैं।

१३—यदि कोई पूछे कि 'पूजा' शब्द का अर्थ क्या है? तो कहो कि 'सत्कार' किसी वस्तु का 'यथोचित' प्रयोग तथा अपराधी को 'दण्ड प्रदान' यही अर्थ शास्त्र सम्मत हैं, अन्य धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य, परिक्रमा आदि अर्थ समझना भारी भूल है।

१४—यदि कोई पूछे कि तुम्हारे हां नारी का दर्जा क्या है? तो कहो कि पगड़ी, ध्वजा, महाराणी, मित्र और सलाहकार का है, यही दर्जा हमारे हां नारी का है! नारी पूज्या है। यह बात

नितान्त मिथ्या है कि नारी नरका द्वार है, अविश्वसनीय है और ताड़ने योग्य है।

१५—यदि कोई पूछे कि लड़का लड़की विवाह का किस आयु में करना उचित है, तो कहो कि कम से कम २५ वें वर्ष में लड़के का और १६ वें वर्ष में लड़की का विवाह करना शास्त्रोक्त है। बालावस्था में विवाह रचाना तो गुड्डे गुड़ियों का खेल रचना है।

१६—यदि कोई पूछे कि विधवा का विवाह शास्त्रोक्त है? तो कहो कि हां, परन्तु वैदिक विधान नियोग के पक्ष में है।

१७—यदि कोई पूछे कि क्या मुसलमान और ईसाई शुद्ध हो सकते हैं? तो कहो अवश्य। केवल विचार ही तो बदलने हैं।

१८—यदि कोई पूछे कि सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली कौन सी है? तो कहो कि गुरुकुल-आचार्य कुल की।

१९—यदि कोई पूछे कि सन्तान को शिक्षारंभ कब करनी चाहिए तो कहो कम से कम ५ और अधिक से अधिक ८ वर्ष की आयु से।

२०—यदि कोई तुम से पूछे कि तुम्हारा 'धर्मग्रंथ' कौन सा है? तो कहो कि 'चार वेद'। यही वस्तुतः हमारे ज्ञान-पथ प्रदीप हैं। बस पर्याप्त है! अब आप लोगों को देर हो रही होगी, आप लोग पधारें, मैं पंजाब अवश्य आकर आपकी सेवा करूंगा। भगवान् आप को सुमति दे। और सदैव कृपा दया की दृष्टि वृष्टि करे।

जनता—धन्यवाद और नमस्ते कह कर यथास्थान चल पड़ी। और साधु जी भी अपनी कुटिया में विश्रामार्थ चले गए।

दानी सज्जन सहयोग दे कर कृतार्थ करें।
ट्रैक्टों द्वारा प्रचार उन्नति का साधन है।
चार दानी सज्जन एक एक सौ रूपया दान दें ताकि उन के नाम से प्रकाशित जनता में उपहार रूप से भेंट किया जाय।

नोट—महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वामी प्रसादित

अध्यात्म प्रसाद

संकलन कर्त्ता : स्वं० स्वामी वेदा नन्द (दयानन्द) तीर्थ सम्वत् २०२३ में प्रकाशन होने वाला उपहार जिस पर ४०० रु० व्यय का अनुमान है शीघ्र प्रकाशत होने जा रहा है।

अब जनता निम्न गीत गाती हुई अपने अपने घरों को प्रस्थान कर रही है–

धन्य है तुझको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया।
सो सो के लुट रहे थे हम तूने हमें बचा दिया॥
अन्धों को आंखें मिल गईं, मुर्दों में जान आ गई।
जादू सा क्या चला दिया अमृत सा क्या पिला दिया॥
तुझ में कुछ ऐसी बात थी स्वामी कि तेरी बात पर।
कितने शहीद हो गये कितनों ने सर कटा दिया॥
श्रद्ध से श्रद्धानन्द ने सीने पे खाई गोलियां।
हँस-हँस के हंसराज ने तन मन व धन लुटा दिया॥
अपने लहू से लेखराम तेरी कहानी लिख गया।
तूने ही लाला लाजपत शेरे बबर बना दिया॥

* भजन *

आया सी स्वामी सुत्ता भारत जगान बदले।
वेदां दा डंका सारे जग ते बजान बदले॥
दुखिया दी सुनके जारी, आया ओ पर उपकारी।
सोहनी जई जिन्दड़ी वारी दुखड़े मिटान बदले॥
ईश्वर नू भुल गये प्राणी, भुल गये सब वेद दी वाणी।
आया परमात्मा दी पूजा सिखान बदले॥
सुत्ते जगाये आके-भुल्ले राह पाये आके।
जीवन लगाया सारा बिछड़े मिलान बदले॥
पीने पये जहर प्याले, सहने पये तेग ते भाले।
हँस हँस के खाई जावे भारत जगान बदले॥
जेकर न औंदे स्वामी, फेरा न पौंदे स्वामी।
औंना सी किसने डुब्दा बेड़ा बचान बदले॥

फ्लोरा प्रिंटिंग प्रैस, अम्बाला छावनी।

अब जनता निम्न गीत गाती हुई अपने अपने घरों को प्रस्थान कर रही है—

धन्य है तुझको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया।
सो सो के लुट रहे थे हम तूने हमें बचा दिया॥
अन्धों को आंखें मिल गईं, मुर्दों में जान आ गई।
जादू सा क्या चला दिया अमृत सा क्या पिला दिया॥
तुझ में कुछ ऐसी बात थी स्वामी कि तेरी बात पर।
कितने शहीद हो गये कितनों ने सर कटा दिया॥
श्रद्ध से श्रद्धानन्द ने सीने पे खाई गोलियां।
हँस-हँस के हंसराज ने तन मन व धन लुटा दिया॥
अपने लहू से लेखराम तेरी कहानी लिख गया।
तूने ही लाला लाजपत शेरे बबर बना दिया॥

* भजन *

आया सी स्वामी सुत्ता भारत जगान बदले।
वेदां दा डंका सारे जग ते बजान बदले॥
दुखिया दी सुनके जारी, आया ओ पर उपकारी।
सोहनी जई जिन्दड़ी वारी दुखड़े मिटान बदले॥
ईश्वर नू भुल गये प्राणी, भुल गये सब वेद दी वाणी।
आया परमात्मा दी पूजा सिखान बदले॥
सुत्ते जगाये आके-भुल्ले राह पाये आके।
जीवन लगाया सारा बिछड़े मिलान बदले॥
पीने पये जहर प्याले, सहने पये तेग ते भाले।
हँस हँस के खाई जावे भारत जगान बदले॥
जेकर न औंदे स्वामी, फेरा न पौंदे स्वामी।
औंना सी किसने डुब्दा बेड़ा बचान बदले॥

फ्लोरा प्रिंटिंग प्रैस, अम्बाला छावनी।

ओ३म्

ऋषिवर की मान्यताएँ

१—वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

२—ईश्वर ने सृष्टि के कारम्भ में, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदयों में वेद विद्या का प्रकाश किया।

३—वेदों के पढ़ने-पढ़ाने व सुनने सुनाने का मनुष्यमात्र को अधिकार है।

४—वेदों में कोई इतिहास व कथा प्रसंग नहीं है।

५—वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं।

६—एक अद्वितीय ईश्वर ही उपास्य है।

७—ईश्वर अजन्मा, निराकार और सर्वशक्तिमान है।

८—ईश्वर अवतार धारण नहीं करता।

९—पाषाण मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है।

१०—माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पति के लिये पत्नी व पत्नी के लिए उसका पति ही मूर्तिमान् पूज्य देवता है।

११—सत्संग, ईश्वरोपासना, सत्याचरण, धर्माचरण, न्यायाचरण परोपकार और यज्ञादि शुभकर्मों का अनुष्ठान आदि ही सच्चे तीर्थ हैं। जलस्थलमय तीर्थ नहीं हैं।

१२—अष्टांगयोग, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, विद्याभ्यास, पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्संग और पुरुषार्थ आदि मुक्ति के साधन हैं।

१३—मुक्तिसान्त कर्मों का फल होने से अनन्तकाल के लिए नहीं होती।

१४—जीव की मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है।

१५—श्राद्ध जीवित पितरों का ही सम्भव है।

१६—हमारा नाम आर्य है।

१७—हिन्दु शब्द अपमान सूचक है।

१८—यवनों और ईसाइयों की शुद्धि आवश्यक है।

वह ईश्वर कैसा है ?

ओ३म- नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरंतीर्न ये वातस्य प्रमिनंत्य भवम्॥६

नहि-ते-क्षत्रम्-न-सहः-न-मन्युं-वयः-चन-अमी-इति।
पतयन्तः-आपुः-न-इमाः-आपः-अनिऽमिषम-चरन्तीः-
न-ये-वातस्य-प्रऽमिनन्ति-अम्बम॥६

भावार्थ—ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य होने से उस का परिमाण वा उसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है यह सब लोक चलते हैं परन्तु लोकों के चलने से उनमें व्याप्त ईश्वर नहीं चलता क्योंकि जो सब जगह पूरण है वह कभी चलेगा। इस ईश्वर की उपासना को छोड़ कर किसी जीव का पूर्ण अखंडित राज्य व सुख कभी नहीं हो सकता। इस से सब मनुष्यों को प्रेमय वा विनाश रहित परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है।६

ओ३म कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्यनाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरञ्च॥

कस्य। नूनं-कतमस्य-अमृतानाम्-मनामहे-चारु देवस्य नाम कः
नः मह्यै-अदितये-पुनः-दात्-पितरम-च दृशेयम् मातरम् च॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रशन का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो सनतान अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन आवनाशी है कि जिस का अत्यन्त उतकर्ष युक्त नाम का स्मरण करें व जाने और कौन देव हम लोगों के लिये किस २ हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का संपादन करता और अमृत व आनन्द के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी फिर हम लोगा को माता पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण करता है। (२४ सूक्त का प्रथम मन्त्र) ऋग्वेद।

तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च । (मे) मम । (राध्यतां) संसेध्यतां । (इदं) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतं । (अहं) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः । (अनृतात्) न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान् मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात्पृथग्भूत्वा । (सत्यं) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्मशुद्ध्या वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत् । सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा । निरु० ३ । १३ । (उप) क्रियार्थे । (एमि) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि ॥ अयं मन्त्रः । श० १ । १ । १ । १—६ । व्याख्यातः ॥५॥

अन्वयः—हे व्रतपते अग्ने सत्यधर्मोपदेशकेश्वर अहं यदिदमनृतात्पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि तन्मे मम भवता स्वकृपया राध्यतां संसेध्यतां यदुपैमि प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शकेयं तदपि सर्वं राध्यतां संसेध्यताम् ॥५॥

भावार्थः—ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। यो न्यायः पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्त्तमान ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः । यश्चैतस्माद्विरुद्धो अधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः । एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्य्या । हे परमेश्वर वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः । येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत् । यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम । यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्धदुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम । यथा भवान् द्रु सत्यव्रतपालकत्वात्पतिर्वर्त्तते

तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रत-पालका भवेम। एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपगताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेष्टितव्यम्। शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च तत्र ये वाङ्मनः-शरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अथार्दसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्॥ ५॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और। (अग्ने) सत्य उपदेश करनेवाले परमेश्वर मैं। (अनृतात्) जो झूँठ से अलग। (सत्यं) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया। (व्रतं) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका। (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। (मे) मेरे। (तत्) उस सत्यव्रत को आप। (राध्यतां) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि। (अहं) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को। (शकेयं) समर्थ होऊं। और मैं (इदं) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम। (चरिष्यामि) करूँगा॥ ५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी

तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर हम लोग वेदों में आपके प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन् आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालने वाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचानेवाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये। शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मंत्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का *आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूँठ का* अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूँठ का आचरण करनेवाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

(१) वेद भाष्यों में जो संकेत दिये गये हैं उनकी बाबत 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' के अन्तिम पृष्ठों में भली भांति ध्यान रहे बतला दिया गया है। अतः भाष्य देखने वाले प्रेमियों को चाहिये कि उक्त ग्रंथ को पहले पढ़ें और फिर भाष्य को देखें तो विशेष रूप से लाभ होगा।

(२) यदि श्री स्वामी जी को केवल वेद भाष्य का ही कार्य करना होता तो वह चारों वेदों का भाष्य उतने ही दिनों में कर डालते जितने दिनों तक वे जीवित रहे। परन्तु व्याख्यान व शास्त्रार्थ आदि भी एक कारण थे कि वे इस कार्य को पूरा न कर सके थे।

(३) जिस समय उन्होंने वेद भाष्य के कार्य में हाथ लगाया उसके बाद भी कुछ अन्य ग्रंथों की ओर से वह उदासीन न थे। उनके कर कमलों अथवा उनके संरक्षण में निम्न लिखित ग्रंथ तैयार हुये थे। अतः उनका नाम व रचना का समय नीचे दिया जाता है :—

नाम	रचना का संवत् वि०
१—आर्योद्देश्य रत्न माला	१९३४
२—पंचयज्ञ महाविधि	१९३५
३—अष्टाध्यायी भाष्य	१९३५ (में आरंभ)
४—वेदाङ्ग प्रकाश (१६ खण्ड)	१९३६-३९
५—भ्रमोच्छेदन	१९३७
६—सत्य धर्म विचार	१९३७
७—गो करुणा निधि	१९३७
८—सत्यार्थ प्रकाश (द्वितीय संस्करण)	१९३९
९—संस्कार विधि " "	१९४०

निदान एक कारण यह ग्रंथ भी थे कि समस्त वेदों का भाष्य न हो सका था।

(४) वेद भाष्यों के पृथक-पृथक खण्डों पर जो सूचनायें व विज्ञापनादि छपे हैं उनसे भी कुछ बातों पर प्रकाश पड़ता है।

काशी से वैदिक यन्त्रालय का प्रयाग आना, मुन्शी इन्द्रमणि जी का मुकदमा आदि बातें।

श्री स्वामी जी के वेद भाष्य पर कलकत्ता संस्कृत कालिज के स्थानापन्न प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न जी की ओर से जो शंकायें हुई हैं, उन्हीं का उत्तर इस ४६ पृष्ठों की हिन्दी पुस्तक में है।

भ्रान्ति निवारण
सम्वत् १९३४ वि०

इसमें यह दिखलाया गया है कि वेदों में अनेक परमेश्वर की पूजा नहीं है। वास्तव में अग्नि आदि नाम ईश्वर के ही हैं। शास्त्र और युक्ति से इसमें यह भली भांति सिद्ध किया गया है।

इसमें पाँच महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ—का विधान संस्कृत मंत्रों व भाषार्थ सहित ४० पृष्ठों में है।

पंच महायज्ञ विधि
सम्वत् १९३५ वि०

वेद का अर्थ जानने के लिये महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी भी एक मुख्य चीज है। इसकी उत्तमता का पता वेदाङ्ग प्रकाश के अधिकांश भागों द्वारा ही चला है और इसी के द्वारा ही उसके पढ़ने की रुचि बढ़ती है। इसके अधिकांश भागों में संस्कृत व हिन्दी दोनों हैं। इस अपूर्व ग्रन्थ की तैयारी में दूसरे पण्डितों का भी बहुत ज्यादा हाथ रहा है और उनकी बदौलत कहीं कहीं अशुद्धियाँ हो गई हैं।

वेदाङ्ग प्रकाश
सम्वत् १९३६ वि०
—१९३९ वि०

ज्ञात रहे कि श्री स्वामी जी के विचार से जिस ढंग की शिक्षा होनी चाहिये उसके लिये वेदाङ्ग प्रकाश एक परम आवश्यक ग्रन्थ है और वैदिक संस्कृत के निमित्त हिन्दी में एक प्रधान साधन है। पूरा ग्रन्थ लगभग १३३६ पृष्ठों का है। इसमें

कुल १६ अङ्ग है किन्तु 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' और 'व्यवहार भानु' को इससे पृथक समझ कर कहीं कहीं इसके अङ्गों की संख्या केवल १४ ही लिखी हुई देखने में आती है।

इसके अन्तर्गत जो ग्रन्थ है उनके नाम क्रमानुसार पृष्ठ संख्या सहित नीचे दिये जा रहे हैं :—

नाम	पृष्ठ संख्या
१—वर्णोच्चारण शिक्षा	२४
२—संस्कृत वाक्य प्रबोध	५२
३—व्यवहार भानु	४४
४—सन्धि विषय	१०५
५—नामिक	६६
६—कारकीय	४६
७—सामासिक	६३
८—स्त्रैणताद्धित	१७८
९—अव्ययार्थ	२८
१०—आख्यातिक	३९२
११—सौवर	२४
१२—पारभाषिक	५६
१३—धातुपाठ	७२
१४—गणपाठ	५६
१५—उणादिकोश	१३८
१६—निघन्टु	६४

श्री स्वामी जी ने इनके पठन पाठन पर जोर दिया है। इन सभों के रचे जाने और प्रकाशन का समय भिन्न भिन्न

है। इनकी बाबत थोड़ा-बहुत आगे लिखा जायगा।

अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्नादि विषय में महर्षि पाणिनि ने जो कुछ कहा है उसी को मूल सहित हिन्दी भाषा में भली भाँति इसमें लिखा गया है। पठन-पाठन की यह पहली पुस्तक है। इससे वर्णों का उच्चारण यथायोग्य हो सकता है।

वर्णोच्चारण शिक्षा
सम्वत् १९३६ वि०

संस्कृत लिखने व बोलने के निमित्त संस्कृत में हिन्दी भाषा अनुवाद सहित बड़ी अच्छी पुस्तक उपदेश-युक्त है। इसके ऊपरी पृष्ठ पर यह शब्द हैं :—

संस्कृत वाक्य प्रबोध
सम्वत् १९३६ वि०

'पठन पाठन व्यवस्थायां द्वितीयं पुस्तकं'—यह ग्रंथ और व्यवहार भानु अब ऐसे ढंग पर छपते हैं कि जिनसे यह नहीं मालूम होता कि यह दोनों वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्ग हैं किन्तु दोनों ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है।

हमारा व्यवहार धर्म-युक्त क्यों कर होना चाहिये। इसका बोध इस पुस्तक (हिन्दी) से बहुत अच्छी तरह होता है। कई दृष्टान्त बड़े मनोरंजक हैं।

व्यवहार भानु
सम्वत् १९३६ वि०

इसकी भूमिका में सम्वत् १९३६ वि० फाल्गुन शुक्ला १५ (अर्थात् शुक्रवार २६ मार्च सन् १८८० ई०) अंकित है। यही तिथि इसकी रचना की प्रतीत होती है। इसके ऊपरी पृष्ठों से स्पष्ट है कि यह पठन-पाठन व्यवस्था की तीसरी पुस्तक है। पहले-पहल यह पुस्तक वैदिक यन्त्रालय में संवत् १९३६ वि०

(अर्थात् उस समय) में छपी थी जब कि यन्त्रालय काशी में था।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने श्री स्वामी जी के विचारों के विषय में कुछ भ्रम फैलाया था*। उसी का उत्तर इसमें है। हिन्दी में यह पुस्तक कुल २३ पृष्ठों की है।

भ्रमोच्छेदन सम्वत् १९३७ वि०

इस ग्रन्थ के अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे रचना-काल बृहस्पतिवार ज्येष्ठ द्वितीया कृष्ण पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २७ मई सन १८८० ई० ठहरता है।

संस्कृत व्याकरण में यह बात है कि :—

सन्धि विषय सम्वत् १९३७ वि०

(१) अच् के स्थान में हल्
(२) हल् " " " अच् और
(१) हल् " " " हल्
(२) अच् " " " अच्

भी हो जाया करते हैं। संधि के ज्ञान से ही यह बात समझ में आ सकती है। सन्धि के ही ज्ञान से पदार्थ ज्ञान और वाक्यार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं। फलतः संधि विषय व्याकरण का प्रथम भाग है। उसी का बोध इस ग्रन्थ में यथोचित रूप से कराया गया है।

---

* राजा साहब की रचना का नाम 'निवेदन' था। इसी के उत्तर में भ्रमोच्छेदन है किन्तु इसके उत्तर में उनकी ओर से दूसरा निवेदन छपा तो उसका उत्तर अनु-भ्रमोच्छेदन नामी पुस्तक में पंडित भीमसेन शर्मा जी की ओर से दिया गया है जो कि वैदिक यंत्रालय से ही प्रकाशित है।

गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों को सुख हो। इसलिये हिन्दी भाषा में यह पुस्तक रची गई। यह २६ पृष्ठों में है। इसमें गाय की उपयोगिता के विषय में अनेक बातें बड़ी उत्तम हैं।

गोकरुणानिधि
सम्वत् १९३७ वि०

इसके अन्त में जो दो संस्कृत पद्य हैं उनके अनुसार रचना काल गुरुवार फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी सम्वत् १९३७ वि० (तदनुसार २४ फरवरी सन् १८८१ ई०) है।

श्री स्वामी जी ने समझा कि गोरक्षा का प्रश्न बहुत आवश्यक है, और इसके द्वारा हिन्दुओं में कुछ संगठन हो सकता है, इस कारण उन्होंने केवल पुस्तक ही न लिखी बल्कि इसका अंग्रेजी अनुवाद भी कराने का उद्योग किया था और अंग्रेजी सरकार में मेमोरियल भेजने का भी उद्योग किया था।

नामिक में सुप् के साथ संज्ञा आदि शब्दों का विधान हुआ करता है इसी कारण से 'नामिक' नाम है। सन्धि विषय के पश्चात् ही इसका पढ़ना उत्तम है। इसी लिये पठन-पाठन के निमित्त यह पांचवीं पुस्तक नियत की गई है।

नामिक
सम्वत् १९३८ वि०

कारक का अर्थ है—करने वाला, ग्रन्थ में कारक का वर्णन है इस कारण यह नाम रखा गया है। वास्तविक बात यह है कि कारकों से जितना अर्थ जाना जा सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं क्योंकि कारक समूह क्रिया द्रव्य और गुण वाची शब्दों के सम्बन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है।

कारकीय
सम्वत् १९३८ वि०

इस ग्रन्थ द्वारा पठन-पाठन होने से सुगमता के साथ कारक सन्धि का बोध हो जाता है और वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ बोध होने में कठिनाई नहीं रहती है।

सामासिक सम्वत् १९३८ वि०

अनेक पदों को एक पद में जोड़ देने को समास कहते हैं। अनेक पद जब मिलकर एक पद हो जाते हैं तब इस विद्या के जाने बिना उस जुड़े हुये बड़े पद का अर्थ नहीं जाना जा सकता। फलतः इस आवश्यक विषय की पूर्ति उत्तम रीति पर इस ग्रन्थ द्वारा होती है।

स्त्रैणताद्धित सम्वत् १९३८ वि०

पढ़ने वालों को स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का बोध होना उचित है। इनके जाने बिना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं। संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है वैसा अन्य से नहीं। इसी कारण इस ग्रन्थ में स्त्री प्रत्यय का प्रकरण थोड़ा-सा और अधिक तद्धित का ही है।

अव्ययार्थ सम्वत् १९३८ वि०

इसमें अकारादि क्रम से अर्थ और उदाहरण सहित अव्यय लिखे गये हैं। अपने ढंग की एक अपूर्व चीज़ है। विषय के समझने में बड़ी सुगमता होती है।

ज्ञात रहे कि जिस शब्द का स्वरूप तीनों लिङ्ग, सातों विभक्तियों और इनके एक वचन, द्विवचन, बहुवचन (अर्थात् सात विभक्तियों के तीन-तीन के हिसाब से इक्कीस वचनों) में एक-सा बना रहे। जैसा उसका स्वरूप प्रथम हो वैसा ही

मध्य और अन्त में भी बना रहे उसमें कोई विकार न हो उसको अव्यय कहा जाता है।

सदृशंत्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

जो शब्द समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्त्ता, कर्म, भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल, एक, दो और बहुत से अर्थों के वाचक हैं उनको आख्यात कहते हैं। ग्रंथ में विशेष रूप से आख्यात शब्दों का ही व्याख्यान है इस कारण आख्यातिक नाम पड़ा है।

आख्यातिक
सम्वत् १९३८ वि०

व्याकरण में यह एक कठिन विषय है किन्तु इसके द्वारा वैदिक और लौकिक सब सूत्र सुगम हो गये हैं और इसमें जो सूची लगाई गई है उससे इस ग्रंथ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

वेदों में उदात्तादि स्वर ऊपर नीचे लगे रहते हैं। जब तक मनुष्य उनको ठीक-ठीक न जाने तब तक लौकिक वैदिक वाक्यों व छन्दों का स्पष्ट प्रिय उच्चारण, गान और ठीक-ठीक अर्थ भी नहीं जान सकता अर्थात् उनसे उचित लाभ नहीं उठा सकता। उन्हीं स्वरों की व्यवस्था का उत्तम बोध इस ग्रंथ से हो सकता है।

सौवर
सम्वत् १९३९ वि०

सब ओर से लौकिक वैदिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिसका सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिससे सिद्ध हो उसको परिभाषा कहते हैं यह परिभाषाओं का व्याख्यान रूप ग्रंथ है इस कारण इसका नाम पारिभाषिक रक्खा गया है। परि-

पारिभाषिक
सम्वत् १९३९ वि०

भाषाओं में से जो अष्टाध्यायी के परिभाषा सूत्र हैं वह सन्धि विषय में व्याख्यापूर्वक लिखे गये हैं। इसमें केवल उन परिभाषाओं का लिखा गया है जो पातंजलि के महाभाष्य में हैं। ज्ञान रहे कि परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य दोषों को निवारण करके व्यवस्था कर देना होता है। अस्तु व्याकरण के सन्धि आदि प्रकरणों में जो २ सन्देह पड़ते हैं वह इन परिभाषाओं के पठन पाठन से निवृत्त हो जाते हैं।

यह ग्रन्थ यथार्थ व्याख्यान और भूमिका सहित आख्यातिक में छप चुका है। परन्तु उसमें धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच-बीच में पड़े हैं इस कारण उस ग्रंथ में मूल का पाठ करना तथा याद करना कठिन पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह मूल पुस्तक पृथक् छपवाई गई है।

धातुपाठ
सम्वत् १९३९ वि०

हाँ, इस पुस्तक से यह भी जाना जा सकता है कि कौन-कौन धातु किस-किस गुण में किस-किस अर्थ में सेट व अनिट है।

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस कारण है कि इसमें एकत्र मिला के बहुत-बहुत शब्दों का समुदाय पठित है।

गणपाठ
सम्वत १९३९ वि०

अष्टाध्यायी में सर्वादि से लेकर जितने गण जिन-जिन सूत्रों पर हैं उन सूत्रों सहित सब इसमें लिखे गये हैं। इन गणों की सूची भी दी गई है। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं टिप्पणियाँ दी गई हैं ताकि सुगमता हो। परन्तु केवल धातुपाठ और उणादि दो गण पृथक्-पृथक् लिखे गये हैं।

इसमें उणादि सूत्रों की वृत्तियाँ सुगम संस्कृत में हैं। कठिन सूत्र का अर्थ और शब्दों के पर्याय व विशेषवाचक शब्द भी दिये गये हैं।

उणादि कोष
सम्वत १९३९ वि०

जो लोग पठन-पाठन-व्यवस्था की वह पुस्तकें पढ़ चुके हैं जो कि इससे पहले की हैं उनके लिये इसकी संस्कृत का समझना कोई कठिन काम नहीं है।

यह अपूर्व कोष (केवल शब्दों का संग्रह) विशेष कर वेद से (और सामान्यतः लौकिक ग्रन्थों से भी) सम्बन्ध रखता है। यह और इसका भाष्य निरुक्त दोनों यास्क मुनि जी के बनाये हुये हैं।

निघण्टु
सम्वत १९३९ वि०

यह ग्रन्थ विशेष उद्योग के साथ प्रकाशित कराया गया है। जो पाठान्तर अनेक प्रतियों में हैं उनको नीचे दिखला दिया गया है और अकारादि क्रम से इसकी शब्दानुक्रमणिका भी इसके अन्त में लगाई गई है जिससे कोई भी शब्द सुगमता के साथ ढूँढा जा सकता है। इसके शब्दों में स्वर भी लगाये गये हैं। वेद का वास्तविक अर्थ जानने में इस ग्रन्थ से विशेष रूप से सहायता मिलती है। इसी कारण इसको विशेष परिश्रम के पश्चात् छपवाया गया है।

अब कुछ शब्द प्रचलित व निघण्टु अनुसार अर्थ सहित नीचे दिये जाते हैं जिनसे प्रत्यक्ष है कि किसी शब्द का अर्थ कितना बदल गया है :—

शब्द	अर्थ	
	प्रचलित	निघण्टु अनुसार
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान

अहि	सर्प	मेघ
अश्मा	पाषाण	मेघ
गौरी	महादेव की स्त्री	वाणी
स्वाहा	अग्नि की स्त्री	वाणी

इससे अनुमान किया जा सकता है कि निघण्टु की महत्ता कितनी है।

श्री स्वामी जी के मन्तव्य संक्षेप के साथ सत्यार्थ प्रकाश (दूसरे संस्करण) के अन्त में सन् १८८४ ई० में सब से पहले प्रकाशित हुये हैं। परन्तु ज्ञात रहे कि यह मन्तव्य बाद को पृथक् भी कई बार अच्छी संख्या में प्रकाशित हुये हैं।

स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश सम्वत १९३९ वि०

इसके आरम्भ में श्री स्वामी जी ने कहा है :—

"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना का मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

इसके सिवा—ईश्वर, सृष्टि, राजा, प्रजा, शिक्षा, तीर्थ आदि ५१ बातों की परिभाषा उत्तम रीति पर बताई गई है। यह स्वमन्तव्यामन्तव्य कुल ८ पृष्ठों का है परन्तु बड़े मारके का है।

यह ग्रंथ श्री स्वामी जी के जीवन काल में मुद्रित नहीं हुआ। इसकी हस्त लिखित प्रति कुछ खंडित हो गई थी किन्तु उसे ठीक कराया गया है। हिन्दी में यह प्रथम,

अष्टाध्यायी का भाष्य सम्वत १९३५ वि० (में आरम्भ)

नवीन और बहुत उपयोगी पुस्तक वेद को समझने के लिये है।

सन् १९४० ई० तक केवल दो भाग ही प्रकाशित हो सके हैं।

नियम और उप-नियम

नियम और उप-नियम जो आर्य समाजों के निमित्त श्री स्वामी जी ने बनाये हैं वह भी पुस्तक के रूप में १२ पृष्ठों (आकार ७½ × ४½ इंच) में ठहरते हैं। यह भी बहुत भारी संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। इनसे उद्देशों तथा संगठन सम्बन्धी नियमों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

उपनियमों में कुछ संशोधन श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की ओर से शनिवार २६ जनवरी सन् १९३४ ई० (माघ बदी ६ सम्वत् १९९१ वि०) को हुआ है और ऐसी प्रति सभा की ओर से पृथक् छपवाई गई है। नियम व उपनियमों की नींव वास्तव में पहले बम्बई में सम्वत १९३२ वि० (सन १८७५ ई०) में पड़ी थी और लाहौर में प्रथम संशोधन सन १८७७ ई० अर्थात् सम्वत १९३४ वि० में हुआ था।

स्वीकार पत्र

फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार अर्थात् २७ फरवरी सन १८८३ ई० को उदयपुर में श्री स्वामी जी ने एक वसीयत नामा (स्वीकार पत्र) अपनी सारी सम्पत्ति के निमित्त लिखा था। इसके अनुसार २३ व्यक्तियों को इसका सदस्य नियुक्त किया था। यह स्वीकार पत्र पुस्तक रूप में कई बार छप चुका है और 'दयानन्द ग्रंथ माला—शताब्दी संस्करण' के दूसरे भाग के अन्त में भी छपा हुआ है। य

केवल ६ पृष्ठों का ही है किन्तु इससे उनके विचारों पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है।

(२) पुस्तक रूप में शास्त्रार्थ

श्री स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये थे। उनमें से जो पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हैं उन्हीं का उल्लेख आगे किया जा रहा है—

मंगलवार कार्तिक सुदी १२ सम्वत् १९२६ वि० अर्थात् १६ नवम्बर सन् १८६९ ई० को काशी में श्री स्वामी जी का शास्त्रार्थ पाषाणमूर्ति पूजा के विषय पर हुआ था। उसी का उल्लेख संस्कृत व भाषा दोनों में कुल १६ पृष्ठों में है।

काशी शास्त्रार्थ सम्वत १९२६ वि०

हुगली (कलकत्ता के पास) में पंडित ताराचरण तर्करत्न जी के साथ चैत सुदी एकादशी सम्वत् १९३० वि० (६ अप्रैल सन १८७३ ई०) को श्री स्वामी जी का शास्त्रार्थ—प्रतिमा पूजन के विषय पर हुआ था। उसी का वर्णन इस छोटी-सी पुस्तक में मिलता है किंतु अन्य अनेक उपयोगी बातें भी हैं। यह पुस्तक सब से पहले बनारस के 'लाइट प्रेस' में सम्वत् १९३० वि० सन् १८७३ ई० में छपी है। ८×५ इंच के आकार में केवल २७ पृष्ठों की है।

प्रतिमा पूजन विचार* सम्वत १९३० वि०

मार्च सन् १८७७ ई० में चांदापूर जिला शाहजहांपूर के

*यह शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ था किन्तु इसको हिन्दी में बाबू हरिश्चन्द्र जी ने पहिले पहल छपाया था।

मेले में ईसाई व मुसलमान विद्वानों के सत्य धर्म की बाबत विचार हुआ था। वही चीज हिन्दी के ३० पृष्ठों में है।

सत्य धर्म विचार ⊛ सम्वत १९३७ वि०

इसके अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे इसके लिखे जाने का समय मंगलवार १२ श्रावण शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् १७ अगस्त सन् १८८० ई० है।

बरेली के राजकीय पुस्तकालय में श्री स्वामी जी व पादरी टी० जी० स्काट साहब का शास्त्रार्थ तीन दिन हुआ था।

सत्यासत्यविवेक

पहला दिन—अनेक जन्म के विषय में।

दूसरा दिन—अवतार अर्थात् ईश्वर का शरीर करना।

तीसरा दिन—ईश्वर का पाप क्षमा करना।

इन विषयों के शास्त्रार्थ की बातें हिन्दी में विस्तारपूर्वक उक्त ग्रन्थ में छपी। यह शास्त्रार्थ २५, २६, व २७ अगस्त सन् १८७९ ई० अर्थात् भादों सुदी ८, ९, व १० सम्वत् १९३६ वि० को हुआ था।

चेतावनी

जो लोग इस भ्रम में हैं कि श्री स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह सबका सब अथवा अधिकांश खण्डन पूर्ण है, उनको जतला देना या जान लेना चाहिये कि श्री स्वामी जी द्वारा लिखी हुई सामग्री वस्तुतः खण्डन से कहीं अधिक

⊛ यह शास्त्रार्थ मुसलमानों की ओर से 'मुबाहसा शाहजहांपूर' के नाम से उर्दू में छपा है इसकी एक प्रति 'मुज्तबाई प्रेस' दिल्ली की छपी हुई (सन् १९१४ ई० की) मैंने देखा है।

मण्डन पूर्ण है जैसा कि उनके समस्त ग्रन्थों पर विचार करने से भली भांति स्पष्ट हो जाता है।

श्री स्वामी जी के समस्त ग्रन्थों की बाबत यदि मोटा सा भी हिसाब किया जाय तो उनकी लिखी हुई सारी सामग्री बड़े आकार (अर्थात् लगभग ९½ × ६ इञ्च) में लगभग १५ हजार पृष्ठों की ठहरती है।

सम्वत् १९८१ वि० सन् १९२५ ई० में १५ से २१ फरवरी तक शिवरात्री के अवसर पर मथुरा नगर में श्री स्वामी जी की जन्म शताब्दी बड़ी धूम-धाम के साथ मनाई गई थी। उसके उपलक्ष में—काशी शास्त्रार्थ, वेद विरुद्ध मत खण्डन, शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण, सत्यार्थ प्रकाश, आर्य्याभिविनय, संस्कार विधि, भ्रान्ति निवारण, आर्य्योद्देश्य रत्न माला, पंच यज्ञ महा विधि, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, व्यवहार भानु, भ्रमोच्छेदन, सत्य धर्म विचार और गो करुणा निधि—इन १४ ग्रन्थों का एक संस्करण दो भागों में (आकार ९½ × ६ इञ्च) लगभग १९०० पृष्ठों में वैदिकयन्त्रालय अजमेर में 'दयानन्द ग्रन्थमाला—शताब्दी संस्करण' के नाम से छपा है। उसमें दिखलाया गया है कि उक्त ग्रंथों में से प्रत्येक सन् १९२४ ई० तक कब कब कितना छपा है।* इस ग्रन्थ माला के दूसरे

* वेद विरुद्ध मत खण्डन पहली बार जिस सन् में छपा वह संख्या अंकित नहीं और 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' के प्रथम संस्करण का समय शताब्दी संस्करण में सन् १९०१ ई० लिखा हुआ है। उसके सम्बन्ध में मुझे यह कह देना है कि यह ग्रन्थ भाषा अनुवाद सहित पहले पहिले उस सन् में छपा। वास्तव में मूल ग्रन्थ सन् १८७५ ई० में छपा है। इसका गुजराती अनुवाद मार्च सन् १८७५ ई० में ही हो गया था।

भाग में 'स्वीकार पत्र' की प्रति भी सम्मिलित है किन्तु वह उक्त १४ ग्रन्थों से अधिक चीज है।

श्री स्वामी जी द्वारा लिखा हुआ बहुतेरा कार्य अधिक से अधिक दस वर्ष के भीतर का ही ठहरता है क्योंकि सन् १८७४ ई० से पहले की चीजें बहुत ही कम हैं। क्या ही अच्छा हो यदि इस विषय पर और अधिक खोज के साथ थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला जाय और यथा सम्भव यह भी दिखाया जाय कि अमुक कारण से इसकी रचना आवश्यक समझी गई। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि श्री स्वामी जी अक्टूबर सन् १८७४ ई० में बम्बई प्रान्त में प्रचारार्थ गये। उधर वल्लभाचार्य मत का जोर था। इस कारण 'वेद विरुद्ध मत खण्डन' के लिखे जाने की नौबत आई थी। यही पुस्तक काफी न थी इसी कारण इसके बाद ही 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' लिखा था।

श्री स्वामी जी द्वारा जो सुधार हुआ है, जो जागृति हुई है यदि उसको एक ओर रख कर हम उनकी हिन्दी की सामग्री पर ध्यान दें तो केवल इस कार्य के विचार से उनका सारा काम कुछ कम महान् नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके अनेक ग्रन्थों में संस्कृत की अच्छी खासी मात्रा है तथापि हिन्दी की सामग्री संस्कृत से अवश्यमेव अधिक है। निदान हिन्दी में उनका जितना लेख है और उनकी लिखी हुई सामग्री का जितना प्रकाशन व प्रचार हुआ है उससे भली भांति स्पष्ट है कि उनके द्वारा हिन्दी का कितना बड़ा काम हुआ है।

मूल्य की दृष्टि से प्रत्येक ग्रन्थ सस्ता है क्योंकि ६½×७-

इञ्च आकार के ४०० पृष्ठों का अथवा ७½ × ५ इञ्च वाला लगभग ८०० पृष्ठों वाला सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में साधारणतः अधिक से अधिक छः आने में मिल जाता है।

श्री स्वामी जी के ग्रन्थ प्रायः वैदिक यन्त्रालय अजमेर से छपे हैं। यह यन्त्रालय सन् १८८० ई० में काशी में स्थापित हुआ था। बाद को प्रयाग और फिर अजमेर पहुँचा है। उक्त सन से पहले जो ग्रन्थ छपे हैं वह कई दूसरे प्रेसों में भी छपे हैं। दयानन्द ग्रन्थ माला—शताब्दी संस्करण से भी इस बात का कुछ पता लग जाता है क्योंकि उसमें सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि व कुछ अन्य ग्रन्थों के पहले पहिल छापे जाने का समय सन १८८० ई० (वैदिक यन्त्रालय की स्थापना) से पूर्व का दिखलाया गया है। इसके सिवा उक्त विषय पर उन पत्रों द्वारा भी बहुत कुछ जाना जा सकता है जो कि श्री स्वामी जी की ओर से अनेक लोगों के नाम हैं और जो कि अनेक लोगों की ओर से श्री स्वामी जी महाराज के नाम हैं। ऐसे पत्रों के विषय में आगे चलकर कुछ लिखा जायगा। किन्तु यह भी ज्ञात रहे कि पत्रों के सिवा जो विज्ञापन श्री स्वामी जी महाराज की ओर से हैं उनसे भी ग्रन्थों की बाबत बहुत कुछ मालूम हो सकता है।

श्री स्वामी जी के कई ग्रन्थ—सत्यार्थ प्रकाश, आर्य्याभिविनय, व्यवहार भानु व आर्य उद्देश्य रत्न माला—मेरी दृष्टि में अवश्य ऐसे आये हैं जो कि सन् १९२० ई० के बाद वैदिक यन्त्रालय के सिवा अन्य स्थानों के प्रकाशित हैं। संस्कार विधि पर दो टीकायें 'संस्कार चन्द्रिका' व 'संस्कार

प्रकाश' और 'सत्यार्थ प्रकाश' के आदि के दो समुल्लासों के भाष्य भी मेरी दृष्टि में आये हैं। मेरे विचार से श्री स्वामी जी के ग्रन्थों की बाबत आवश्यकता है कि उनके सम्बन्ध में यह बातें लिखी जायें :—

(१) प्रत्येक (मूल) ग्रन्थ कब, कितना, किस आकार में और कहां छपा है। किसके द्वारा प्रकाशित हुआ है।

(२) टीका, टिप्पणी या किसी अन्य विशेषता के साथ वह ग्रन्थ छपा है तो उसका भी उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय।

(३) किसी ग्रन्थ का अनुवाद किसी ने किस भाषा में कब किया। वह अनुवाद कब, कितना और कहाँ छपा। किस के द्वारा प्रकाशित हुआ। यदि अनुवाद अनेक हुये हैं तो प्रत्येक का उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय। और यदि अनुवाद के संस्करण कई हुये हैं तो यथा संभव प्रत्येक संस्करण का समय प्रकाशक, प्रेस, संख्या और आकार आदि का उल्लेख होना उत्तम है। इन बातों के सिवा यदि कोई और बात उसके विषय की हो तो उसे भी अवश्य दिखलाना चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं कि जो कुछ लिखने तथा एकत्र कर देने के लिये मैंने ऊपर कहा वह एक कठिन काम है किन्तु उसकी उपयोगिता तथा महत्ता से कोई विचारशील पुरुष इन-कार नहीं कर सकता।

तृतीय अध्याय

पत्र-व्यवहार

पत्रों में अनोखा जादू हुआ करता है। यही मूलकारण है कि यदि किसी व्यक्ति के हाथ दूसरे का पत्र लगता है तो एक ही आध ऐसा होता है जो दूसरे का पत्र न पढ़ता हो। दूसरी बात यह कि मनुष्य के आचार-विचार आदि पर जो प्रकाश उसके लिखे हुये पत्रों से पड़ता है वह उसके लेख या व्याख्यान आदि से कभी-कभी नहीं पड़ा करता है।

श्री स्वामीजी के पहले तथा उनके समय में भी जो हिंदी सेवी हुये हैं उनमें से किसी के भी पत्र ऐसे प्रतीत नहीं होते जो कि पुस्तक रूप में पृथक् प्रकाशित हुये हों। वास्तव में श्री स्वामी जी के ही पत्र पहले-पहल पृथक् पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये प्रतीत होते हैं।

'दयानन्द लेखावली' के नाम से सन् १९०३ ई० में एक छोटी-सी पुस्तक पंजाब प्रिंटिङ्ग वर्क्स लाहौर' में छपी थी। इसमें सात संस्कृत पत्र हिन्दी भाषा अनुवाद सहित हैं। इनमें से दो पत्र श्री स्वामी जी की ओर से थ्योसफ़ीकल सूसायटी के सभासदों के नाम व दो पत्र श्रीमती रमा के नाम हैं और तीन पत्र श्रीमती रमा के श्री स्वामी जी के नाम हैं कोई अन्य पुस्तक इससे पहले की छपी हुई अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आई और न मुझे किसी अन्य प्रकार से मालूम हुई है जिसमें श्री स्वामी जी के केवल पत्र ही पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हों।

श्री राम-विलास सारडा जी द्वारा 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नामी एक जीवन-चरित्र श्री स्वामी जी महाराज का पहली बार सम्वत् १९६१ वि० (सन् १९०४ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसमें अनेक पत्र परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हैं। इनमें से कुछ श्री स्वामी जी की ओर से हैं और कुछ श्री स्वामी जी के नाम हैं। परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि एक दिन उक्त जीवन-चरित्र के चौथे संस्करण की एक प्रति मेरी दृष्टि में आई और उसमें वह पत्र न मिले जो कि प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुये हैं। फलतः प्रथम के सिवा दूसरे व तीसरे संस्करणों ही में निकले हैं—इस बात की बाबत दूसरे व तीसरे संस्करणों से पता लगा है।

अब यह भी ज्ञात हो कि पत्र-व्यवहार विषयक उद्योग स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा भी उसी समय में हुआ था जब कि वह लाला मुंशीराम जिज्ञासु जी थे। इनका ग्रन्थ—'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' के नाम से सन् १९१० ई० में प्रकाशित हुआ है। इसमें केवल आठ पत्र ऐसे हैं जो कि श्री स्वामी जी के हैं। बाकी लगभग २०० पत्र ऐसे हैं जो कि भिन्न-भिन्न लोगों की ओर से श्री स्वामी जी की सेवा में पहुँचे हैं। इसके पश्चात् श्री पं० भगवतदत्त जी बी० ए० का उद्योग है कि 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' के नाम से श्री स्वामी जी के लगभग २३० पत्र व अनेक विज्ञापन आदि चार भागों में छपे जिनमें से प्रथम भाग सन १९१८, द्वितीय भाग सन् १९१९ ई०, तृतीय भाग जनवरी सन् १९२७ ई० और चतुर्थ भाग जुलाई सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ। इन

भागों में सब पत्र ऐसे हैं जिनको कि श्री स्वामी जी ने भिन्न-भिन्न लोगों के पास भेजा था। हाँ, यह भी ज्ञात रहे कि श्री स्वामी जी के आठ पत्र जो कि स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में हैं वह सब उक्त चारों भागों में आ गये हैं।

'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' इस नाम से एक पुस्तक गुरुकुल-कांगडी जिला सहारनपुर से स्वर्गीय श्री चमूपति जी के उद्योग से सम्वत् १९९२ वि० में प्रकाशित हुई है। इसमें श्री स्वामी जी के अन्तिम काल के ही पत्र हैं। और जितने पत्र श्री स्वामी जी के हैं उनसे कहीं अधिक पत्र वह हैं जो कि श्री स्वामी जी की सेवा में भेजे गये हैं।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित पत्रों से अनेक बातों का पता चलता है अतः उदाहरणार्थ जानना चाहिये :—

१—उस काल में कितनी जबरदस्त श्रद्धा अनेक लोगों में धर्म के लिये थी।

२—कुछ स्थानों में परस्पर विरोध भी पैदा हो गया।

३—वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्कों को पं० भीमसेन व पं० ज्वालादत्त जी ने ही बहुत कुछ बनाया था। इसकी अशुद्धियों के जिम्मेवार श्री स्वामी जी को ठहराना ठीक नहीं।

४—कुछ अन्य पुस्तकों में जो अशुद्धियाँ हुई हैं वह वास्तव में अन्य लोगों के कारणों से हुई हैं।

५—श्री स्वामी जी गोरक्षा के विषय में बहुत कुछ करना चाहते थे।

६—जिस समय के पत्र हैं उस समय की ऐसी हिन्दी का पता चलता है जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती

थी क्योंकि संग्रह में अनेक पत्र ऐसे हैं जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं।

श्री पं० भगवत दत्त जी द्वारा सम्पादित चारों भागों के पत्रों से श्री स्वामी जी महाराज के आचार, विचार तथा जीवन सम्बन्धी बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यह सब पत्र अधिकांश श्री स्वामी जी के जीवन के अन्तिम भाग के हैं। समस्त पत्र हिन्दी, संस्कृत, उर्दू व अँग्रेजी में हैं। श्री स्वामी जी उर्दू व अँग्रेजी न जानते थे। अतः ऐसे पत्रों को उन्होंने अवश्य किसी से लिखवाया था। परन्तु हिन्दी के अवश्य और सम्भव है कि संस्कृत के कुछ पत्रों को भी उन्होंने किसी और से लिखवाया हो।* अनेक पत्रों में समय अंकित है किन्तु अनेक का समय किसी दूसरे पत्र के सहारे जाना जा सकता है। अनेक पत्रों में उस स्थान का भी नाम लिखा हुआ है जहाँ से कि वह पत्र भेजा गया था। फलतः यह कि श्री स्वामी जी की ओर से जो पत्र हैं और वह पत्र भी जो कि श्री स्वामी जी की सेवा में भेजे गये हैं अर्थात् सब के सब बड़े काम के हैं केवल उन लोगों के लिये जो कि इनसे वास्तव में लाभ उठाना चाहें।

जयपूर में समाज स्थापित हुआ। पण्डितों ने श्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की चेष्टा की। श्री स्वामी जी को पत्र द्वारा यह बात मालूम हुई तो उन्होंने जयपूर के पत्र-प्रेषक बाबू

* हिन्दी व संस्कृत के अनेक पत्र आद्योपान्त उनके ही हाथ के लिखे हुये हैं।

नन्दकिशोर जी को मिती ज्येष्ठ शुक्ल १४ बुध सम्वत् १९३९ वि० के पत्र में यह लिखा :—

"देखो बड़े शोक की बात है कि जयपूर में अनेक गिरजा-घर बन गये और पादरी लोग राम कृष्णादि भद्र पुरुषों की निन्दा करते हैं और सैकड़हों (सैकड़ों) को बहका कर भ्रष्ट कर रहे हैं। उनके हटाने को पण्डित व राजा आदि राजपुरुषों ने कुछ भी प्रयत्न न किया। और जो आप लोगों ने सत्य वेद धर्म की उन्नति होने के वास्ते समाज स्थापित किया है उसकी उन्नति होने में पण्डित आदि विघ्नकर्त्ता होते हैं। इतने ही से तुम समझ लो कि ये क्या शास्त्रार्थ करेंगे सिवाय परोक्ष में गाल बजाने के।"*

रजवाड़ों के विषय में एक को श्री स्वामी जी ने यह लिखा है :—

"आप जानते हैं कि रजवाड़ों का लखोटिया ज्ञान है अर्थात् जब तक अग्नि के सामने रहें तब तक पिघले रहते हैं।"†

(मिती वैशाख सुदी ११ शनि सम्वत् १९३९ वि०)

श्री स्वामी जी ने फाल्गुन कृष्ण दशमी सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २४ फरवरी सन् १८८१ ई० को गो करुणा निधि नामक पुस्तक हिन्दी में लिखी। वह चाहते थे कि इसका अनुवाद हिन्दी में हो ताकि इङ्गलैण्ड निवासी अँग्रेज लोग गोरक्षा के महत्व को समझें। इस बात का उल्लेख उनके अनेक पत्रों में

---

* ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृ० ६६।

† ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—चतुर्थ भाग पृ० ३७।

है।* किन्तु वह यह भी चाहते थे कि गोरक्षार्थ और आर्य भाषा अर्थात् हिन्दी के निमित्त अनेक स्थानों से सरकार में मेमोरियल जायें। इन बातों की चर्चा भी उनके अनेक पत्रों में है। यहाँ केवल दो पत्रों से कुछ शब्द दिये जा रहे हैं।

"गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी। इसका भी उत्तर लिखना। इस समय (आर्य भाषा के) राजकार्य में प्रवृत होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं सो शीघ्र भेजना। और आप लोग भी जहाँ तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।†

(१४ अगस्त सन् १८८२ ई०—उदयपुर से)

दूसरे पत्र में भाषा और गोरक्षा के निमित्त यह लिखा है—

"आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेज कर बनारस आदि स्थानों से और जहाँ जहाँ परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल ‡ भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं। अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जावेगी। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। इसलिये विशेष

---

* ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन— चतुर्थ भाग, पृष्ठ २३, २९, ३०, ३१, ३२, ३७।

† ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५०।

‡ आर्य भाषा के निमित्त—लेखक

लिखना आवश्यक नहीं। और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है। इस विषय में ध्यान देना अवश्य है।"*

(बृहस्पति शुद्ध श्रावण शुक्ल ३, सम्वत् १९३९ वि०)

आज कल नौकरी की समस्या जैसी जटिल है उसके लिये कहा ही क्या जाय। यह समस्या सन् १८८० ई० के आस-पास में भी कुछ बेढब अवश्य थी। कला-कौशल विषयक स्कूलों की आवश्यकता आज बहुत ज़्यादा बताई जाती है किन्तु श्री स्वामी जी ने ऐसे स्कूल की आवश्यकता बहुत ही पहले सोची थी। एक पत्र में लिखा है :—

"यह अब स्पष्ट है कि बहुत से पढ़े-लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती, या वे जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला-कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष को अपनी आय का १०० वां भाग प्रस्ताविक संस्था को देना चाहिये। उस धन से चाहे तो विद्यार्थी कला-कौशल सीखने जर्मनी भेजे जायें या वहाँ से अध्यापक यहाँ बुलाये जायें। जो कोई इस फण्ड के व्यय पर इन धन्दों को सीखे, उसे प्रतिज्ञा करनी होगी कि स्वशिक्षा समाप्त करने पर सभाया फण्ड की वह १२ वर्ष तक सेवा करेगा। यह प्रश्न यहाँ विचारा जा रहा है और जो कोई परिणाम निकलेगा तो हम आपको सूचना देंगे।" †

(३० नवम्बर सन् १८८० ई०—आगरा से)

---

* ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५२ व ५३।

† ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—द्वितीय भाग, पृष्ठ ३२

स्पष्ट रहे कि श्री स्वामी जी के पत्रों की यह थोड़ी-सी बातें हैं। परन्तु ऐसा भी कभी-कभी अवश्य होता है कि केवल भेजने वाले के पत्र से ही पत्र का आशय भली भांति नहीं मालूम होता। जब उसके उत्तर का पता लगता है अथवा उस पत्र का पता लगता है जिसके उत्तर में वह पत्र लिखा गया है तब वास्तव में पत्र का रहस्य खुलता है। फलतः श्री स्वामी जी के कुछ पत्रों के साथ वह पत्र भी दिये जा रहे हैं जो कि श्री स्वामी जी के पत्र के उत्तर में हैं अथवा जिनके उत्तर में श्री स्वामी जी की ओर से पत्र हैं। ऐसे पत्रों से पत्रों का वास्तविक भाव भी पूर्णतया या बहुत कुछ मालूम हो जायगा और श्री स्वामी जी तथा कुछ साधारण लोगों के पत्रों व हिन्दी के नमूने भी साथ ही साथ मालूम हो जायेंगे—

(१)

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग

संख्या ४८। ता० १ फरवरी सन् १८८२

श्रीस्वामी जी महाराज जी योग्य पं० सुन्दरलाल वा दयाराम तथा भीमसेन का अभिवादन विदित हो

पत्र आप का आया हाल जाना। अब कुल पुस्तक २० पौंड के कागज पर छपते हैं। पहिले २४ पौंड पर वेदभाष्य और २० पौंड पर अन्य पुस्तक छपते थे सो ज्ञात हो। और आप की आज्ञानुसार वर्ष २ का पुस्तकों का हिसाब तयार करके भेजा जावेगा। परन्तु प्रयाग में यन्त्रालय १ अप्रैल सन् १८८१ को आया है सो अब ३० अप्रैल सन् १८८२ को वर्ष पूरा होगा। सो १ मई तक मैं हिसाब तैयार करके भेजूँगा।

लाला वल्लभदास जी का हिसाब पिछले रजिष्टिरों में मिला नहीं है इससे नहीं लिखा अब फारसी के रजिष्टिर जो लाला शादी राम के लिखे हैं उन को पं० सुन्दरलाल जी आप खुद देखकर अब के पत्र में आप को लिखेंगे और हमने छब्बीस २६ फरमें का ठेका जो दिया था सो न चल सका इस में पं० देवीप्रसाद और विश्वेश्वरसिंह जी ने भी बहुत प्रयत्न किया तथापि चल न सका सो अब २० फारम से अधिक एक महीने में नहीं छप सकते। तथा अव्ययार्थ के पुस्तक में कोठे बनाने से और भी देरी हुई। और अब आख्यातिक का भूमिका सहित छः फरमा छप गये हैं आगे छपता जाता है। और इस पुस्तक के बिल्कुल लौटने और नवीन बनाने में सब महाभाष्य सिद्धान्त और काशिका पुस्तकों का होता है इस से छपने के लिए नवीन कापी बनाने में देर होती है और आप के यहाँ से ठीक २ शुद्ध कापी आवे तो इतनी ढील न हो।

कागज का प्रबन्ध मुम्बई से हो जाना बहुत अच्छा है। इस का प्रबन्ध आप निश्चत कर लीजियेगा और अपने सामने एक बेल कागज का जिस में २४ रीम होते हैं वह भेजवा दीजियेगा चाहे जैसे पौंड का जैसा आप मुनासिब जानें। और मेरे पास कागज वाले का पता लिख भेजिये कि मैं आगे को उसी से कागज मंगाया करूँ। और छपने की स्याही भी आजाया करे। आपने जो जो पुस्तक जब जब जहां २ मंगाये बराबर भेजे। वे पुस्तक कौन से हैं कि आपने मंगाये और यहाँ से न गये। जो आप की भेजी चिट्ठी ही मेरे पास न आई हो तो मैं लाचार हूँ जैसे कि आपने महाराजे उदयपुर का इश्तिहार भेजा और

मेरे पास आज तक नहीं आया है कहीं डांक में मारा गया मैं लाचार हूँ। अब उस विज्ञापन को कृपा करके शीघ्र भेज दीजियेगा। मेला अच्छा हुआ भीड़ भाड़ ३०००००० तीस लाख करीब बहुत हुई। फिर बीमारी हैजे की अमावास्या को जो फैल गई इससे सब मेला उठा दिया गया। मासिक हिसाब २४ जनवरी को आप के पास भेजा है सो पहुँचा होगा। देर यों हुई कि आर्य्यभाई बहुत लोग वैदिक यन्त्रालय में ठहरे थे उनके आदर सत्कार से तयार न कर सका। सो माफ करना और सब लोग यहाँ से प्रसन्न गये। हम लोगों को महाराजे उदयपुर को पदवी ठीक ठीक मालूम नहीं थी और आपका भेजा विज्ञापन आया नहीं फिर सज्जन कीर्त्ति सुधारक जो अखबार उदयपुर से आता है उस के आदि में जो महाराजा की पदवी लिखी है वही हमने छपवादी सो आप के देखने को भेजते हैं सो देख लीजिये। आगे आप जैसी आज्ञा करें उन के विषय में फिर छपवा दिया जावे। तब तक आप के वेदङ्गप्रकाश और दूसरी बार सत्यार्थ प्रकाश न छप जायगा तब तक इस यन्त्रालय में दूसरा पुस्तक नहीं छपेगा। और जो आवश्यक होगा उस में आप की आज्ञा ली जावेगी। और मेले में कोई पं० वा मुंशी नहीं मिला ❀।

आगे हम को टैप अधिक ढलवाने के वास्ते सीसा और सुरमा चाहिये विलायती देसी जो मिलता है उससे काम नहीं चलता यदि मुंबई से उसके मंगाने का प्रबन्ध हो जाय तो

❀ यहाँ तक यह पत्र पण्डित भीमसेन जी के अक्षरों में लिखा हुवा है इसके आगे राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल जी के अक्षरों में अङ्कित है

बेहतर है। आगे मुनसी और पंडित की हम को भी बड़ी तलास है पर ढब का कोई मनुष्य नहीं मिलता है। लाहौर से लाला जवाहिर-सिंह मन्त्री आर्य समाज के आये उनसे भी कहा उन्होंने कहा कि प्रयाग में तो नहीं पर लाहौर में बहुत मिल जायंगे और उन्होंने यह भी कहा कि यह यन्त्रालय लाहौर में उठ जाय तो वहाँ के समाज के मेम्बर बड़ी उन्नति करें। मैंने कह दिया कि मुझको कुछ उजर नहीं है श्री स्वामी महाराज की आज्ञा मंगालो सो निश्चय है कि इस मध्ये में आर्य समाज के लोग आप को लिखें। हिसाब आपको सब चीज का बहुत दुरुस्ती के साथ भेजा जायगा पर हाल में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है कि अच्छे प्रकार से काम करे जब तक बाबू यहाँ थे तब तक तो वह खुद देखते भालते थे जब से वह चले गये हैं तब से सिर्फ दयाराम ही है सो लिखने-पढ़ने का काम जैसा चाहिये वैसा नहीं होता है मैं भी इस बात को खूब जानता हूँ। पर जब तक कि मुन्शी अच्छा नहीं मिलेगा तब तक यह ही दिक्कत रहेगी—और पं० भीमसेन भी कहते हैं कि हमारे पास काम-बहुत बढ़ गया है सो यदि आपकी आज्ञा होय तो ज्वालादत्त को बुला लें १५) महीना लेगा पर उसको आपकी आज्ञा बिना बुला नहीं सकते हैं।

(१) का उत्तर

पंडित सुन्दर लाल जी आनन्दित रहो!

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया। समाचार विदित हुआ। जो प्रतिमास में २० फारम वेद भाष्य के और १२ फारम वेदांग प्रकाशादि के छपें तो कुछ चिन्ता नहीं। परंतु इतने से कम

न छपना चाहिये। जो.....के मंत्री ने छापाखाना.....में होने के विषय में लिखा है यह बिलकुल बेसमझ की बात है। क्योंकि प्रथम तो जगह २ छापेखाने के होने में व्यर्थ हजारों रुपये खर्च होते हैं। और छापेखाने की प्रसिद्धि होने में भी बहुत काल लग जाता है। प्रबन्ध भी बिगड़ जाता है। और भी बहुत प्रकार की हानि हो जाती है। इससे छापाखाना प्रयाग ही में रहेगा।.....में तो इस भाषा के जानने वाले कंपोजीटरों का भी मिलना दुर्लभ है। जो वह हम को लिखेगा तो हम उसको उत्तर दे देंगे। यह उसका लिखना बिलकुल व्यर्थ है।

तुम और बाबू विश्वेश्वर सिंह छापेखाने की तरफ दृष्टि रक्खोगे और भीमसेन को चेतन कर दोगे। मिति फाल्गुन वदी ३ सोमवार सम्वत् १९३८।*

(ह० दयानन्द सरस्वती)

---

(२)

॥ ओ३म् ॥

श्री मन्महाराजाधिराजेषु। शोभितसमाजेष्वस्मदुद्धारकेषु॥ श्रीमत्स्वामीदयानन्द सरस्वतीष्वस्मत् कृत्ता नतिततेयाधाराः सदोल्लसंतु कोटिशः॥

उदत्तस्त्वेषः

यहाँ पर राज में एक मासिक पत्र जिसका नाम धर्म्मजीवन है लाहौर से प्रतिमास आता है अब की बार मारच

* ६ फर्वरी सन् १८८१।

सम्बन्धी पुस्तक १ अंक ३ जो उसमें यह समाचार मुद्रित था श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को महाराज जोधपुर ने जन्म भर के लिये कैद कर दिया है। यहाँ के जयपुर गजट वाले ने भी इस समाचार को अपने पत्र में मुद्रित कर दिया इस असत्य समाचार को देख हमारी सभा को बड़ा शोक हुआ क्योंकि यह प्रतिष्ठा भंग समाचार जिसको ताजी रात हिन्द में इजाले हैसियत उर्फी लिखा है साक्षात विदित है इस कारण यहाँ की अंतरंग सभा से प्रबन्ध होकर एक पत्र इसका उत्तर लेने के लिए लाहौर धर्म जीवन के पास भेजा गया है और लाहौर समाज तथा मेरठ समाज को इस विषय में संमति लेने के लिये लिखा गया है। क्योंकि इस सभा का मनोरथ इस विषय में नालिश करने का है इस कारण आपके चरणारविंद में प्रार्थ है इस विषय में क्या अनुष्ठान होना उचित है।

ओम्तत्सत्

बिहारीलाल

मन्त्री वैदिक धर्म्म सभा

सवाई जयपुर

(२) का उत्तर

(ओ३म)

श्रीयुत बिहारी लाल जी आनन्दित रहो।

धर्म्म-जीवन और मित्र-विलास आदि पत्रों का झूठ बकना ही रात दिन काम है। और जैपुर गजट वाला भी उनके सदृश ही बुद्धि रखता होगा। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। जैसी सम्मति लाहौर और मेरठ वाले दें वैसी करो। तुम जानते

ये कि स्वामी जी जोधपुर में गये ही नहीं। फिर तुम को शोक कैसे हुआ। और हमारे लिये ऐसे सैकड़ों मनुष्य बका करते हैं, कि जैसे मित्र-विलास और धर्म्मजीवन आदि पत्रों के मांसाहारी काश्मीरी ब्राह्मण आदि लाहौर में बका करते हैं। सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९
(शाहपुरा) ९ मार्च १८८२ गुरुवार
(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

---

(३)

आर्य समाज फर्रुखाबाद
२—५—८३ ई०

श्रीमत्सच्चिदानन्दस्वरूपाय परमगुरवे नमः

मान्यवर

कृपा पत्र आया इतिवृत ज्ञात किया, मान्यपत्र की प्रति पहुँची, हिसाब देख लिया ३००) रु० की हुन्डी इस पत्र के साथ रख दी है। पाठशाला की यथावत् व्यवस्था दूसरे पत्र में इसके साथ नत्थी है।

वैदिक-प्रेस में पं० रामनाथ को भेजा था इस अंतर में दूसरा मनुष्य वहाँ नियुक्त हो जाने से रामनाथ लौट आए—यन्त्रालय का हिसाब-किताब बही-खाता दुरुस्त नहीं है। हमारी समझ में जब तक कोई सराफी पढ़ा अच्छा प्रामाणिक मुनीम नहीं रहेगा तावत्काल हिसाब ठीक-ठीक नहीं चल सकेगा, यह रुपये का विषय है इसमें ठीक-ठीक प्रबन्ध होना चाहिए आगे

जैसी आपकी सम्मति हो, उचित जान निवेदन किया, शेष सर्व प्रकार आनन्द है। शाहपुरा के सुसमाचारों से बाधित कीजिए।

कालीचरण

(३) का उत्तर

ओ३म्

श्रीयुत कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २-५-८३ का लिखा हमारे पास सहित ३००) की हुंडी के आया। मैं भी जानता हूँ वैदिक यंत्रालय का हिसाब गड़बड़ है। परंतु अब पंडित सुंदर लाल जी का आदमी गया है। वह हिसाब किताब लिखा करेगा। इससे आशा है कि सुधर जायगा। यदि न सुधरेगा तो जैसी आप लोगों की समति यही कि एक सराफी पढ़ा हुआ अच्छा प्रामाणिक आदमी आप लोगों की सम्मति से लिया जायगा। इसके लिये आज मैंने पण्डित सुंदरलाल जी को लिखा है उनकी सम्मति आने पर मैं लिखूंगा। अथवा परवारा पंडित सुंदर लाल जी तुम को लिखेंगे। लाला सेवाराम जी तथा बाबू जी आदि का मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। और यह एक फोटोग्राफ तथा छोटा सा पत्र रामानन्द को दे दीजियेगा। और पाठशाला के कक्षा विषय में अवकाश पाकर लिखूंगा और यहाँ का समाचार भी।

शाहपुरा

मि० वै० शु० सं० १९४०। ❀

दयानन्द सरस्वती

❀ १० मई बृहस्पति सन् १८८३।

(४)

ओ३म

श्रीयुत मनोहरदास खत्री संपादक भारतमित्र आनंदित रहो—आपने मेरे भेजे पत्र को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया उसका उपकार मानता हूँ परन्तु शेष विषय भी छापने के योग्य जान कर मैंने लिखा था क्योंकि इस पूर्व पत्र के सम्बन्धी थियोसोफीकल सुसायटी के प्रधान हैं इसीलिए यह विषय लिखा था और मैं आप को सुहृदभाव से लिखता हूँ कि यदि आप अपने भारत मित्र समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करणल ओलकाट आदि के करामात वा मिसमिरेजम से अनेकों के रोग निवारण आदि नितांत मिथ्या विषयक भी न छापें नहीं तो समाचार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी अब थोड़े समय में करणेल ओलकाट लाहौर में गए थे उन का रोग निवारणादि सामर्थ्य अत्यंत झूठ बड़े २ बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा कि इन का यह सब ऊपर का ढोंग है और जितना व्यवहार बाहर वा भीतर का थियासोफीष्टों का मैं जानता हूँ इतना आर्यावर्तीय लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं जब इन लोगों ने झूठे दांभिक मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही मैंने नहीं दी तभी से वे अपना प्रपंच पृथक करने लगे और मैं उन से पृथक हो गया अस्तु थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे एक श्रीकृष्ण खत्री ने ता० २८ वीं जुलाई सन् १८८३ को लिखकर हमारे पास भेजा है और उन्होंने बहुत से सनातन आर्य धर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पंचांग बनाने के लिए मुझ से सहाय चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी

जिस पत्र पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है इसलिए मैं आप से पूछता हूँ कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण कर्म स्वभाव वाले हैं और जैसा उन ने लिखा है कि इसमें भारतमित्र सम्पादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इन को योग्य समझते हैं यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझको प्रत्युत्तर लिखिये तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जायगा और जो एक पत्र बहुत दिन हुए मैंने लिखा था जिसमें गोरक्षार्थ अर्जी देने का मसोदा वहाँ के वकील बारिष्टरों से पूछ के आप लिखें उसका क्या हुआ अब उसमें अधिक विलंब करना उचित मैं नहीं समझता यहाँ जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जायगा*

(४) का उत्तर

श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य

श्री१०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराजकी सेवामें

श्रीयुत महाशय श्रीकृष्ण जी खत्री सम्पादक भारतमित्र

कलकत्ता का पत्र।

भारतमित्र कार्यालय।

नं ६० कौसस्ट्रीट कलकत्ता, १८ आगष्ट १८८३

महानुभव !

आपके कृपा पत्र से कृतार्थ हुआ। आप "भारतमित्र" के

*इस पत्र के अन्त में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का हस्ताक्षर नहीं है परन्तु इस पत्र में श्रीयुत महाशय श्रीकृष्ण जी खत्री कलकत्ता के २८ जूलाई १८८३ के पत्र का वर्णन है जो श्रीस्वामी जी महराज के नाम उक्त महाशय जी ने भेजा था।

यथार्थ हितैषी हैं इस लिये भारतमित्र आपके पास ऋणी है। हम आपको अनेक धन्यवाद देते हैं। परंतु इस अवसर पर इसका कुछ विवरण आपसे कहना उचित समझता हूँ।

देश हित के लिये कई मित्रों ने मिल कर 'भारतमित्र पत्र प्रकाशित किया है। इस में किसी का कुछ स्वार्थ नहीं है। मित्रगण अपना २ अवसर समय इस पत्र की सेवा में लगाते हैं। इन ही मित्र वर्गने एक कमेटी स्थापित की है उसी भारत-मित्र कमेटी से सब कार्य्य निर्वाह होता है। बाबू मनोहरदास खत्री भारतमित्र के सम्पादक नहीं है जैसा कि आप जानते हैं परंतु मैनेजर (कार्य सम्पादक) हैं। पं छोटुलाल मिश्र इस पत्र के सम्पादक है। कई मास से विषय कर्म्म में व्याप्त रहने के कारण यह भारतमित्र का सम्पादन नहीं कर सकते। इनके एक मित्र श्रीकृष्ण क्षत्री ने सम्पादन का भार लिया है। भारत-मित्र में अब सब लेख उन्हीं का है। वास्तव में अब वही भारत-मित्र सम्पादक हैं। अवश्य इन सब लेखों में छोटु जी की सम्मति रहती है। यही श्रीकृष्ण क्षत्री "ज्ञानवर्धिणी" सभाके सम्पादक भी हैं जिनके विशेष परिश्रम से गोरक्षा विषय के शास्त्र यहां से आपकी सेवा में गये थे। यह महाशय अंग्रेजी में भी व्युतपन्न हैं। इस पत्र के लेखक भी वही श्रीकृष्ण क्षत्री हैं।

अब में (श्रीकृष्ण क्षत्री) आपसे परिचित होगया॥ आप भारतमित्र-पत्र को देख कर जैसी कुछ मेरी योग्यता समझें। "आर्य्य पंचांग" बनाने से मेरी यह इच्छा है कि इस से सर्व साधारण को आर्य्य समाज के वैभव का ज्ञान हो जायगा। इन

समाजों से भारत वर्ष की कहां तक उन्नति हुई और होने की सम्भावना है यथार्थ में स्वामी दयानन्द जी-से आर्य्य भूमि का कैसा हित हुआ, सबको "आर्य्य पंचांग" से घर बैठे इस विषय का ज्ञान हो जायगा। इसी अभिप्राय से मैंने आपकी सहायता मांगी। अब आप जैसा उचित समझें। लाहोर "आर्य्या" के सम्पादक अजमेर, प्रयाग, फरुखाबाद, साजिहान-इत्यादि नगरों के आर्य्य समाजों के मन्त्री हम लोगों पर विशेष कृपा रखते हैं।

गोरक्ष विषय के आवेदन पत्र के लिए आपने लिखा सो उस का यत्न हो रहा है। यथा समय में आपको लिखूँगा।

कर्नेल आलकट साहब के विषय में आपके उपदेश के लिये मैं कृतज्ञ हूँ। ऐसा कोई विषय भारतमित्र में नहीं रहता जिसका विशेष प्रमाण हमें न मिला हो। परंतु जब बात बात में हमें दूसरे सम्बाद पत्र और मान्य मनुष्यों पर निर्भर करना होता है तो किसी समय में भ्रम होना असम्भव नहीं है। अंत में "आर्य्य पंचाग" के विषय में आपकी इच्छा जानने की आशा लगी रही। आपकी अभिरुचि जानने पर इस विषय का एक विज्ञापन भारतमित्र में दूँगा। कृपा कर पत्र का उत्तर शीघ्र दीजियेगा।

आपका कृपाकाङ्क्षी

श्रीकृष्ण क्षत्री

सम्पादक "भारतमित्र

समस्त प्रकाशित पुस्तकों में श्री स्वामी जी की ओर से कुल २०० के लगभग पत्र पाये जाते हैं। इनमें से सब से पुराना मेरे विचार से ❀ फाल्गुन बदी २ इंदुवार सम्वत् १९३१ वि० का है जो कि श्री गोपालराव हरिदेशमुख जी के नाम का है और तृतीय भाग के पृष्ठ १४२ पर आरम्भ होता है।

श्री स्वामी जी ने लगभग २० वर्ष तक काम किया था। इतने काल के कुल २०० के ही लगभग प्रकाशित पत्र व थोड़े से अन्य अप्रकाशित पत्र वास्तव में बहुत कम हैं।। सच तो यह है कि जिस समय में इनके निमित्त कुछ काम करने की आवश्यकता थी उस समय में काम नहीं किया गया। निस्सन्देह यह पहली उदासीनता हमारी ओर से थी किन्तु जो पत्र बड़ी खोज व परिश्रम के पश्चात् प्रकाशित हुये हैं उनके प्रति भी हमारी उदासीनता कुछ कम नहीं है क्योंकि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित पत्र-व्यवहार के छपने की दुबारा नौबत शायद नहीं आई † और न इस एक के बाद कोई और पुस्तक उनकी ओर से पत्रों के विषय में प्रकाशित हुई है। इसके उपरान्त यह भी स्पष्ट रहे कि श्री भगवत दत्त जी द्वारा जिन पत्रों का सम्पादन हुआ है उनमें-से भी किसी भाग के दुबारा छपने की नौबत शायद अभी तक नहीं आई है। प्रत्येक भाग यद्यपि एक हज़ार से अधिक नहीं छपा है।

❀ २२ फरवरी सन् १८७५ ई०।

† पत्र-व्यवहार की कुल प्रतियाँ पहली बार केवल एक हज़ार ही छपी थीं।

सुना है कि श्री स्वामी जी के कुछ अप्रकाशित पत्र श्रीमती परोपकारणी सभा अजमेर में हैं। कुछ सम्भवतः पं० भगवत दत्त जी अथवा श्री प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकार में है। २६ पत्र श्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी हेड हिन्दी विभाग प्रयाग विश्व-विद्यालय के पास हैं ❀ मैंने इनको देखा है। उनकी कृपा से मैंने उन पत्रों की नकल ले ली है। श्री डाक्टर साहब की ओर से एक लेख उन पत्रों के सम्बन्ध में इलाहाबाद 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका अप्रैल सन् १९४० में निकल चुका है। सम्भव है कि कुछ पत्र और कहीं हों।

सन् १८७३ ई० से श्री स्वामी जी ने हिन्दी भाषा से अधिक काम लेना और उसमें व्याख्यान देना आरम्भ किया। क्योंकि सन् १८७३ ई० की २३ फरवरी को कलकत्ता में उनके एक संस्कृत व्याख्यान का अनुवाद एक सज्जन ने अशुद्ध किया। उस समय तक उन्होंने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रखा था। फलतः इसी घटना के पश्चात् उन्होंने हिन्दी में उपदेश करने का निश्चय किया। निदान श्री स्वामी जी के जो पत्र उक्त समय के पहले के रहे होंगे वह सब संस्कृत में ही रहे होंगे। अधिक और न लिखते हुये यह कह देना आवश्यक है कि सब पत्रों को जो मिल सकें अच्छे ढङ्ग पर प्रकाशित होने की बड़ी आवश्यकता है। मैंने इस विषय में कुछ कार्य कर रखा है। यदि कोई सज्जन या कोई सभा इस

❀ इनमें से १६ पत्र श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम हैं।

काम को पूर्ण करने के लिये तैयार हो तो मैं कुछ सम्मति सहित समस्त सामग्री सहर्ष दे दूँगा।

हमारे पाठकों पर यह बात भी भली भांति स्पष्ट रहे कि पत्र-व्यवहार विषयक प्रकाशित ग्रन्थों आदि में जो विज्ञापन व प्रशंसा-पत्र आदि हैं वह भी सब के सब पत्रों के मुकाबिले में कुछ कम उपयोगी नहीं है। उनकी ओर भी पाठकों को विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उनका प्रकाशन भी टीका-टिप्पणी सहित अच्छे रूप में (पत्रों के साथ ही साथ) होना कुछ कम अच्छी बात न होगी।

अब दो विज्ञापनों को नीचे दिया जा रहा है। एक वह जिसे उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण (सन १८७५ ई०) की बाबत निकाला था और दूसरा वह जो कि वेद-भाष्य के अपूर्व होने के सम्बन्ध में निकाला गया था।

विज्ञापन (१)

सब को विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रंथों में गृह्य-सूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं। वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ जो-जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यंत महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रंथ हैं, उनको भी मैं

साक्षी के समान मानता हूँ। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करें और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेद-मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।*

विज्ञापन (२)

भाष्यस्यापूर्वत्वे दृष्टान्ताः संक्षेपतोऽन्येपि लिख्यन्ते। तत्र सत्येष्वार्षेषु सनातनग्रन्थेषु रूपकाद्यलङ्कारेण सत्यविद्या-प्रकाशिकाः प्रमाणयुक्तिसिद्धा अनुत्तमा बहूत्यः कथा लिखिताः सन्ति। तासां मध्याद्दिग्दर्शनवत्काश्चित्कथा अत्र वेदभाष्य-

* यह विज्ञापन ऋग् और यजुर्वेद भाष्य के अंक १ और २ के टाईटल के पृष्ठ पर छपा है। इससे यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३५ मास श्रावण में लिखा होगा।

भूमिकायां मयोल्लिखिताः। यासामज्ञानादाधुनिक पुराणग्रंथेषु भ्रान्त्या मनुष्यैस्ता अन्यथैव लिखिता उपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च। तत्परीक्षार्थं संक्षेपतो ऽत्रविज्ञापनपत्रेपि काश्चिल्लिख्यन्ते। तद्यथा। प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्योभूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्। एतरेयब्रा० पंचिका ३ अध्याय ३। प्रजापतिः सविता। शतप० काण्डे १० अध्यायः २। तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः। निरु० अध्याय ४ खं० २१। द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो ३ र्योनिरन्तरत्रापि तादुतुर्गर्भमाधात्। निरु० अध्याय० ४ खंड २१। शास्मद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यङ्काद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यम्। पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्संशग्म्येन मनसादधन्वे। ऋग् मन्त्रद्वयमिदम्। ज्योतिर्भाग आदित्यः। निरु०। अ० १२। खंड १।

॥ भाषार्थ ॥

"इस भाष्य के अपूर्व होने में तीन कथा दृष्टान्त के लिये इस विज्ञापन पत्र में संक्षेप से लिखते हैं उनमें से एक यह कथा है कि जिसको श्रीमद्भागवतादि नवीन ग्रंथों में बहुत विपरीत करके लिखी है जिस कथा को वेद विरोधी मत वाले नहीं जानके लोगों को मिथ्या बहका के अपने चेले कर लेते हैं और जो वेद मत वाले हैं वे भी सत्य कथाओं को नहीं जानने से और मिथ्या कथाओं को सुन के भ्रान्त होके उनके चेले हो जाते हैं सो देखो चित्त देके कि कितना बड़ा भ्रम मनुष्यों को अज्ञान से हुआ है (प्रजापतिर्वै०) प्रजापति नाम है सूर्य का

क्योंकि सब प्रजा का जो पालन होना उसका मुख्य हेतु सूर्य ही है। उसकी दो कन्या हैं। एक द्यौः अर्थात् प्रकाश और दूसरी उषा जो चार घड़ी रात्रि रहने से प्रातः काल पूर्व दिशा में किंचित्प्रकाश होता है क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसका सन्तान कहाता है सो इन दोनों का पिता की नाईं सूर्य है और उन दोनों को सूर्य की कन्या की नाईं समझना उषा जो सूर्य की उस में पिता जो सूर्य उसने अपना किरण रूप वीर्य को डाला उन दोनों के समागम से यह जो आदित्य अर्थात् प्रकाश मय दिन है। यह एक पुत्र उत्पन्न होता है ॥१॥ तथा इसी प्रकार से पर्जन्य जो मेघ है सो पिता स्थानी है और पृथिवी उसकी कन्या स्थानी है क्योंकि जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है इस से ये दोनों पिता पुत्रवत् हैं सो अपनी कन्या जो पृथिवी उसमें मेघ जो पिता वह वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को डालता है इन दोनों के परस्पर समागम से गर्भ धारण होने से अन्न औषधि और वृक्षादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं यह पिता और दुहिता की रूपकालंकार कथा से उत्तम विद्या का अत्यन्त प्रकाश होता है इस उत्तम कथा को बिगाड़ के अज्ञानी लोगों ने बुरी प्रकार से लिखी है। दूसरी यह कथा है जिसको बहुत प्रकार से लोगों ने पुराणों में बिगाड़ के लिखी है।"

हाँ, पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि जो पत्र श्री स्वामी जी की सेवा में अनेक लोगों की ओर से पहुँचे हैं उनको भी भली भाँति एकत्र कर देने व प्रकाशित करने की कुछ कम आवश्यकता नहीं है। जो पत्र श्री स्वामी जी के

पत्र के उत्तर में है अथवा श्री स्वामी जी का पत्र जो किसी के पत्र के उत्तर में है—दोनों की बाबत यथोचित उल्लेख हो कि यह अमुक के उत्तर में है अथवा अमुक इसके उत्तर में है। यदि ऐसा किया जायगा तो एक बड़ी उत्तम बात होगी।

अब इस विषय की समाप्ति से पहिले श्री डाक्टर धीरेंद्र वर्मा जी के पास वाले पत्रों में से श्री स्वामी जी के उन तीनों पत्रों को यहाँ दिया जा रहा है जो कि आद्योपान्त श्री स्वामी जी के कर-कमलों से ही लिखे हुये हैं। इन तीनों में से एक संस्कृत में है। उसका भाषा अनुवाद भी दिया जायगा। यह संस्कृत पत्र भाषा अनुवाद सहित और इसके पहले का हिन्दी पत्र दोनों 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका प्रयाग में प्रकाशित हो चुके हैं और हिन्दी का पहला पत्र 'सरस्वती' अप्रैल सन् १९४० ई० में मेरे ही एक लेख में छपा है और किसी पुस्तक में नहीं छपा है।

ज्ञात रहे कि यह तीनों पत्र स्वर्गीय श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा जी के नाम के हैं जो कि श्री स्वामी जी के बड़े श्रद्धालु शिष्य थे। यह भारत से बाहर चले गये थे। भारत के क्रान्तिकारी दल के मामिले में इनका विशेष हाथ रहा है। यह भारत में वापस न आ सके थे और विदेश में ही स्वर्ग को सिधारे थे।

(१)

संवत् १९३५ वि० फाल्गुन शु० ८ शनि० ता० १ मार्च सन् १८७९

पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो। ता० २४ फरवरी का लिखा पत्र आपका आया सब हाल विदित हुआ।

मेरी ओर से पाताल देश वासी लोगों* को बहुत बहुत प्रेम प्रीति के साथ आशीर्वाद यथोचित कह के कुशल क्षेम पूँछना। और वे वहाँ कितने दिन रहके किधर किधर जाना होगा जब लाहौर आदि समाजों में जाना हो तब पहिले ही हमको विदित कर देना उचित है उनका सत्कार यथा योग्य सर्वत्र हो। और वे मुंबई में नवीन समाज और थियोसोफिकल सुसाइटी का स्थापन करेंगे सो क्या बात है? समाज तो है ही पुनर्नवीन समाज और थियोसोफिकल का स्थापन करना कुछ समझ में नहीं आया इतना खुलासा लिखो जिससे समझना सुगम हो। आगे जो रुपयों के विषय में लिखा सो विदित हुआ उन सब की इच्छा हो वेदभाषादि के छपाने में खर्च हो तो अच्छा है आगे इससे अधिक परोपकारक विषय हमको नहीं विदित होता आगे जैसी सब की प्रसन्नता हो सो करें। आगे एक मुन्शी समर्थदान वेदभाष्य का काम वहाँ करेगा यह बड़ा भद्र पुरुष है नागरी पारसी तो अच्छी तरह से जानता है थोड़ी सी अँग्रेजी भी जानते हैं अपने घर का प्रतिष्ठित मातबर पुरुष है पर यहाँ हरद्वार से दो चार दिनों में मुम्बई आने के लिये रवाना हो के वहाँ पहुँचेगा इसको सब काम छापे वालों से और कागज वालों से नियम व्यवहार करा देना और इसको किसी प्रकार का दुःख न हो

---

* थियोसोफीकल सोसाइटी (अमरीका) के प्रधान कर्नल एच० एस० आल्काट और मेडम ब्लेवस्तकी की ओर संकेत है जो स्वामी जी से मिलने के लिये अमरीका से बम्बई में १५ या १६ फरवरी सन् १८७९ को पहुँचे थे।

स्थान आदि का प्रबन्ध कर देना सब से मिलाप भी करा देना और एक चपरासी भी मातवर आगे का हो तो वही नहीं तो कोई दूसरा रखवा देना ठीक ठीक व्यवस्था करा देना चाहिये।

(दयानन्द सरस्वती)

(२)

सं० १९३५ फा० शु० ११ मङ्गल ता० ४ मार्च सन् १८७९

पंडित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा आनन्दित रहो तुम्हारा ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ मैं बहुत शोक इस बात में करता हूँ कि हमारे प्रिय बन्धुवर्ग पाताल देश निवासी लोगों को मुम्बई में आ के मिल नहीं सकता क्योंकि हरद्वार में चैत्र की समाप्ति पर्यन्त ठहरने का नोटिस फाल्गुन शुदी ६ गुरुवार से दे चुका हूँ। और यहां इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूँ अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता। जब वे इस देश में लाहौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब यहाँ वा कहीं अत्यन्त प्रेम के साथ उन से मिलूंगा और बातचितें भी यथोचित होंगी उन से मेरा आशीर्वाद कह के कुशल क्षेम प्रेम से पूँछना। और जो तुमने समाज के विषय में लिखा कि न आओगे तो यहाँ का आर्य-समाज टूट जायगा क्या तुमने समाज हरिचन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आने-जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहाँ-कहाँ आ-जा सकता हूँ जो समाज में अयोग्य प्रधान हो उसको छुड़ा कर दूसरा नियत करके समाज का काम ठीक-ठीक चलाना चाहिये। कल यहाँ से चल कर मुंशी समर्थदान वेद भाष्य के काम पर नियत हो

के मुम्बई को आते हैं तुम से मिलेंगे छापे वालों और कागज वालों से ठीक-ठीक नियम करा देना और बाबू हरिचन्द्र चिन्तामणि से भी सब पुस्तक पत्रे दिला देना सब हिसाब किताब करा के शीघ्र खुलासा करा देना और इनको मकान आदि का क्लेश कुछ भी कभी न होने पावे।

दयानन्द सरस्वती

(३)

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठ्युपमायुक्तेभ्यः श्रीयुत श्यामजिकृष्णवर्मभ्यो दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमांशमिहास्ति तत्रात्यं भवदादीनां च नित्यमाशासे। अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थदाननामानं पुरुषं वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सनीडं मुम्बापुर्यां वर्त्तमानेऽहनि प्रेषयामि यथासमयमयं तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथंचित्क्लेशो न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्यसम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनीयानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति। ये तत्र सभासदः सज्जनाः सन्ति तैः सह संमेलनम्। ये तत्र पाताल देशनिवासिनो वर्त्तन्ते तेभ्योऽत्यन्तादरेणाशिषः संश्राव्य कुशल क्षेमता प्रष्टव्या। यथा मयि प्रीति वर्त्तते तथैवैतस्मिन्प्रेमभावो विधेयो विद्याऽध्ययन सहायः स्थानभृत्य प्रबन्धश्च यथावत्समर्थदानस्य कार्य्य इति च।

दयानन्द सरस्वती

स्वामी जी के उपर्युक्त संस्कृत पत्र का हिन्दी रूपांतर निन है:—

सं० १९३५ फाल्गुन सुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमत् उपमायुक्त श्रीयुत् श्याम जी कृष्ण वर्मा को स्वामी दयानन्द सरस्वती के आशीर्वाद। यहां कुशल है, वहाँ आप लोगों के कुशल की आशा करता हूँ। आगे यह जानना कि समर्थदान नाम के एक मनस्वी पुरुष को वेदभाष्य के प्रबन्ध के लिये आज आप के पास बम्बई शहर को भेज रहा हूँ। जिस समय ये वहाँ पहुँचें इन्हें कोई क्लेश न हो इसका यत्न आपको करना चाहिये। वेद भाष्य सम्बन्धी कार्यों को साधन करना है और इसमें अब विलम्ब न होना चाहिये इति। जो सभासद सज्जन वहाँ हैं उनके साथ मिलना चाहिये। वहाँ जो पाताल देश वासी सज्जन हैं उन्हें भी बड़े आदर से आशीर्वाद सुना कर उनका कुशल क्षेम पूछना। जैसा प्रेम मुझमें है वैसा ही प्रेमभाव इनसे भी रखना और विद्याध्ययन में इनकी सहायता तथा समर्थदान जी के ठहरने का स्थान और नौकर का प्रबन्ध कर देना। इति।

दयानन्द सरस्वती

चतुर्थ अध्याय

मनोरंजक अनोखी बातें

श्री स्वामी दयानन्द जी की प्रतिभा अद्वितीय थी। उनका जीवन चरित्र और उनके ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं। उन्होंने बहुत सी बातों को बड़ी गम्भीरता से समझाया व सुलझाया है। पर अनेक अवसरों पर उनकी बातें बड़ी अनोखी व विनोद-पूर्ण ढङ्ग की भी हुई हैं। फलतः इसी प्रकार की कुछ बातें यहाँ पर दी जाती हैं।

(१)

एक ज्योतिषी जी स्वामी जी महाराज के विचारों से परिचित न थे। अतः स्वामी जी के पास पहुँचे। स्वामी जी ने ज्योतिषी जी से पूछा—आप किस प्रयोजन से आये हैं ?

ज्योतिषी जी—मैं ज्योतिषी हूँ, महाराज ! कुछ प्राप्ति की आशा से आया हूँ।

स्वामी जी—यदि आपको आते समय ज्योतिष द्वारा यह ज्ञान हो गया था कि यहाँ से कुछ प्राप्त होगा तो आपका ज्योतिष झूँठा क्योंकि मैं तो कुछ भी नहीं दूँगा। और यदि आपको यह पता लग गया था कि यहाँ से कुछ नहीं मिलेगा तो आप व्यर्थ ही आये।

(२)

एक बार एक पंडित जी शास्त्रार्थ के विचार से स्वामी जी के पास आये। स्वामी जी जहाँ थे वहीं एक चबूतरा था और

एक वृक्ष भी था। स्वामी जी नीचे ही एक आसन पर विराजमान थे। पर पंडित महाराज आकर के चबूतरे पर बैठे। लोगों ने इस बात को अच्छा न समझा और पंडित जी से नीचे बैठने के लिये ही प्रार्थना की पर पंडित जी न माने।

ऐसा होने पर स्वामी जी ने लोगों से कहा—कोई हर्ज नहीं। पंडित जी को ऊँचे स्थान पर ही बैठे रहने दीजिये। यदि ऊँचे स्थान पर ही बैठने में बड़ाई है तो वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा पंडित जी से भी अधिक ऊँची जगह पर है। अस्तु वही बड़ा हुआ।

(३)

जाड़े के दिन थे। श्री स्वामी जी से एक सज्जन राम अधीन ने पूछा—आज कल तो जाड़ा बहुत पड़ता है किन्तु आपको क्यों जाड़ा नहीं लगता ?

स्वामी जी (रामअधीन से)—आपके मुँह को जाड़ा क्यों नहीं लगा करता ?

रामअधीन—यह सदैव खुला ही रहता है।

स्वामी जी—यही हाल हमारे शरीर का है। यह हर समय खुला रहता है इस कारण इसको जाड़ा नहीं लगता।

(४)

श्री स्वामी जी के समय में कुछ लोग बहुत विद्वान समझे जाते थे अथवा वह अपने को बहुत विद्वान मानते थे। ऐसे लोगों से जब यह कहा जाता था कि श्री स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ कीजिये तो इनमें से अनेक लोग नाना प्रकार के बहाने से बचते रहे।

कुछ लोग कहते थे कि वह (श्री स्वामी जी) नास्तिक ! है। हम नास्तिक का मुँह देख नहीं सकते। ऐसा सुन कर श्री स्वामी जी कहा करते थे कि यदि मेरा मुँह नहीं देखना चाहते तो परदे की आड़ करके शास्त्रार्थ करें। परन्तु ऐसी दशा में भी कुछ लोगों ने शास्त्रार्थ करना पसन्द न किया। आरा के एक पण्डित जी ने मजबूरन परदे के आड़ से शास्त्रार्थ किया और वह परास्त हुये।

(५)

लुधियाना की बात है कि एक पंडित जी शास्त्रार्थ के बीच में अपने साथियों से कहने लगे कि इस दुष्ट (स्वामी जी) का मुँह देखना पाप है। सब लोगों को चाहिये कि यहाँ से उठ चलें।

ऐसा सुन कर स्वामी जी बोले—यदि मेरे मुँह देखने में पाप है तो पीठ फेर कर बैठ जाइये पर शास्त्रार्थ करते चलिये।

(६)

एक बार श्री स्वामी जी के एक नौकर ने कहा कि आप कहते हैं कि 'राम राम' बार-बार कहने से कुछ लाभ नहीं। ऐसा कहने से क्यों लाभ नहीं। श्री स्वामी जी ने उस समय कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर के बाद उसका नाम लेकर पुकारा। किन्तु कुछ और न कहा। कुछ देर के पश्चात् फिर उसका नाम लिया और चुप रहे।

श्री स्वामी जी ने कई बार ऐसा ही किया और कुछ न कहा। इस पर नौकर ने कहा कि महाराज आप पुकारते हैं और कुछ नहीं कहते। श्री स्वामी जी ने कहा—जिस प्रकार

तुम्हारा नाम लिया और कुछ नहीं कहा तो नाम लेना व्यर्थ हुआ, उसी प्रकार यदि किसी का केवल नाम लिया जाय और कुछ न कहा जाय तो नाम लेना निरर्थक होता है।

(७)

एक नाई को स्वामी जी महाराज के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह भोजन ले आया। स्वामी जी खाने लगे। कई ब्राह्मण महाराज भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने ऐसा देख कर स्वामी जी से कहा—महाराज ! आप क्या अनर्थ कर रहे हैं। नाई की रोटी खा रहे हैं।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—यह रोटी तो गेहूँ की है। नाई की तो नहीं है।

(८)

एक दिन श्री स्वामी जी महाराज एक थाली में भोजन कर रहे थे। इतने में एक पौराणिक सन्यासी जी वहाँ पधारे। वह स्वामी जी को देख कर कहने लगे—महाराज धातु का स्पर्श सन्यासियों के लिये वर्जित है। आप थाली में क्यों रोटी खा रहे हैं ?

सन्यासी महोदय का सर मुँडा हुआ था। अतः भोजन के पश्चात् स्वामी जी सन्यासी के सर पर हाथ फेरने लगे और फिर हँस कर बोले—यह सर तो सम्भवतः जूते से साफ कराया गया होगा क्योंकि सन्यासियों को धातु का स्पर्श पार है।

(९)

एक स्थान में दो मुसलमान सज्जन स्वामी जी के पास पहुँचे

और कहने लगे—हमने सुना है कि आप मुसलमानों को आर्य बना सकते हैं।

स्वामी जी—अच्छे मार्ग पर चलने वाले को आर्य कहते हैं। यदि आप उत्तम उत्तम कार्य करने लगेंगे तो आप भी आर्य बन जायेंगे।

दोनों मुसलमान—यदि हम आर्य बन जावें तो क्या आप हमारे साथ भोजन करेंगे ?

स्वामी जी—आर्य धर्म के अनुसार किसी को किसी का जूँठा न खाना चाहिये। हाँ एक ही साथ (एक ही बर्तन में नहीं बल्कि पृथक् पृथक् बर्तनों में) खाना दोष नहीं है।

दोनों मुसलमान—जूँठा खाने से तो प्रेम बढ़ता है।

स्वामी जी—यह बात ठीक नहीं है। यदि इस प्रकार से प्रेम बढ़ता है तो कुत्ते जो एक संग खाते हैं वह एक साथ ही खाने वाले परस्पर क्यों लड़ पड़ते हैं।

(१०)

कोई व्यक्ति श्री स्वामी जी को 'बाबा जी' कहा करता था। श्री स्वामी जी ने कहा कि बाबा जी मुझे न कहा करो। पूछा गया कि इसमें क्या बात है ? श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इसके अर्थ हैं—घोड़ा नहीं तो खच्चर।

क्योंकि 'वा (विकल्पे) वाजी—अश्व वा अश्वतर'

(११)

सुप्रसिद्ध मुसलमान सर सैयद अहमद खां साहब को कौन नहीं जानता। एक बार आप ने श्री स्वामी जी महाराज से हका—यह बात समझ में नहीं आती कि थोड़े से हवन से वायु

का सुधार कैसे होता है ? महाराज ने कहा—दाल को थोड़ी सी ही चीज से बघारा (छूँका) जाता है। वह सुगंधित हो जाती है और उसकी सुगंध दूर तक पहुँचती है। इसी प्रकार थोड़े से हवन से वायु में सुगंध फैलती है।

(१२)

श्री स्वामी जी अपने शरीर पर गङ्गारज लगाया करते थे। किसी ने प्रश्न किया—स्वामी जी आप शरीर पर गङ्गा-रज क्यों लगाते हैं ? स्वामी जी ने उत्तर में कहा—गङ्गा-रज लगाने से मच्छरों के काटने का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा करता।

(१३)

एक पंडित जी तिलक व भस्म लगाने के बड़े भक्त थे। उन्होंने स्वामी जी से कहा कि जो लोग तिलक व भस्मादि से अपने मस्तक को पवित्र नहीं किया करते वह स्वर्ग में स्थान नहीं पावेंगे।

श्री स्वामी जी महाराज ने हँस कर कहा—यदि तुम सारे मुँह पर कालिख लगा लो तो सम्भवतः सब से ऊँचा स्थान तुम को ही स्वर्ग में मिल सकेगा।

(१४)

एक बार किसी पंडित जी ने स्वामी जी से पूछा महाराज ! पत्थर में परमात्मा है कि नहीं ?

स्वामी जी—पत्थर में परमात्मा अवश्य है।

पंडित जी—फिर तो उसके पूजने में कोई दोष न होना चाहिए।

स्वामी जी—घड़ियाल में ईश्वर है ?

पंडित जी—अवश्य है।

ऐसा उत्तर पाकर स्वामी जी महाराज ने कहा—तुम कैसी बुद्धि के मनुष्य हो। दो-चार तोले की मूर्ति को सर झुकाते हो। तुम उसकी पूजा करते हो। पर चार पाँच सेर भारी घड़ियाल को लकड़ी से पीटते हो।

(१५)

एक बार श्री स्वामी जी महाराज गङ्गा के किनारे इस ढंग से लेटे थे कि शरीर का कुछ भाग जल में था और कुछ जल से बाहर पृथिवी में था। इतने में एक मगरमच्छ उधर दिखाई पड़ा। लोगों ने शोर किया और श्री स्वामी जी से (वहाँ से) हटने के लिए प्रार्थना की।

श्री स्वामी जी ने कहा—कोई हर्ज नहीं है। मैं उसे नहीं छेड़ूँगा। वह मुझे कष्ट न देगा। अन्त में वह मगरमच्छ वहाँ से चुप-चाप चला गया।

(१६)

श्री स्वामी जी बनारस में थे। उनके पास एक विद्यार्थी था, वह सनातनी विचार का था। विश्वनाथ महादेव का बड़ा उपासक था। सायंकाल के समय रोज विश्वनाथ जी के दर्शन के निमित्त जाया करता था।

एक दिन स्वामी जी ने उससे पूछा सायंकाल सन्ध्या समय तू कहां चला जाया करता है। विद्यार्थी ने उत्तर दिया—मैं विश्वनाथ जी के दर्शन के लिए चला जाया करता हूँ। इस अवसर पर कई व्यक्ति उपस्थित थे उन्होंने समझा कि स्वामी जी विद्यार्थी को निकाल देंगे। किन्तु स्वामी जी ने केवल इतन

—अवश्य है।

र स्वामी जी महाराज ने कहा—तुम कैसी बुद्धि
। दो-चार तोले की मूर्ति को सर झुकाते हो।
ा करते हो। पर चार पाँच सेर भारी घड़ियाल
ीटते हो।

(१५)

ी स्वामी जी महाराज गङ्गा के किनारे इस ढंग
रीर का कुछ भाग जल में था और कुछ जल से
में था। इतने में एक मगरमच्छ उधर दिखाई
शोर किया और श्री स्वामी जी से (वहाँ से)
ार्थना की।

जी ने कहा—कोई हर्ज नहीं है। मैं उसे नहीं
के कष्ट न देगा। अन्त में वह मगरमच्छ वहाँ
ला गया।

(१६)

जी बनारस में थे। उनके पास एक विद्यार्थी
ी विचार का था। विश्वनाथ महादेव का बड़ा
सायंकाल के समय रोज़ विश्वनाथ जी के दर्शन
ा करता था।

वामी जी ने उससे पूछा सायंकाल सन्ध्या समय
जाया करता है। विद्यार्थी ने उत्तर दिया—मैं
के दर्शन के लिए चला जाया करता हूँ। इस
व्यक्ति उपस्थित थे उन्होंने समझा कि स्वामी
निकाल देंगे। किन्तु स्वामी जी ने केवल इतन

ी कहा—क्या किया जाय
की बुद्धि ही पत्थर की हो

(

एक बार मेरा* छोटा
ोड़ रहा था। स्वामी जी ने
ेरा भाई बैरों को स्वामी

इस पर मैं ने कुछ उत्त
ने मेरे भाई को बुलाया
(मालिक) की आज्ञा के बि

उसने उत्तर दिया—म
किया। सभी लोग तोड़ते
यदि सब लोग चोरी करेंगे

(

एक व्यक्ति शिव जी पर
जी ने उससे कहा—आप शि
वह इसे नहीं खायेगा। ह
दो तो इसके द्वारा उस
जायगी।

(

कहते हैं कि दिल्ली के
से कहा—आप मूर्ति पूजा
अच्छी बात है। यह काम

*प्रयाग के स्वर्गीय पंडित

ही कहा—क्या किया जाय, पाषाण पूजते पूजते इस विद्यार्थी की बुद्धि ही पत्थर की हो गई है।

(१७)

एक बार मेरा* छोटा भाई जयराम एक बैर के पेड़ से फल तोड़ रहा था। स्वामी जी ने मुझे बुलाकर कहा—शिवराम देख तेरा भाई बैरों को स्वामी की आज्ञा बिना तोड़ रहा है।

इस पर मैं ने कुछ उत्तर न दिया। इस के पश्चात् स्वामी जी ने मेरे भाई को बुलाया और उससे पूछा—तू बैर के स्वामी (मालिक) की आज्ञा के बिना क्यों बैर तोड़ रहा था ?

उसने उत्तर दिया—महाराज हमने तोड़ा तो कौन सा पाप किया। सभी लोग तोड़ते हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा—यदि सब लोग चोरी करेंगे तो क्या तू भी चोरी करेगा ?

(१८)

एक व्यक्ति शिव जी पर बेल-पत्र चढ़ाने जा रहा था। स्वामी जी ने उससे कहा—आप शिव की मूर्ति पर चढ़ाने जा रहे हैं वह इसे नहीं खायेगा। हां, इसको किसी पशु के सामने डाल दो तो इसके द्वारा उसकी कुछ भूक अवश्य शान्त हो जायगी।

(१९)

कहते हैं कि दिल्ली के एक मुसलमान सज्जन ने स्वामी जी से कहा—आप मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। यह काम इस्लाम के अनुकूल है।

*प्रयाग के स्वर्गीय पंडित शिवराम जी का कथन है। (लेखक)

स्वामी जी—मूर्ति पूजा जिसे हिन्दू लोग करते हैं मैं केवल उसका ही खण्डन नहीं करता हूँ बल्कि मैं सब जातों की मूर्ति पूजा का खण्डन किया करता हूँ। हिन्दुओं की मूर्तियां डील-डोल में चार अंगुल से लेकर कई हाथ ही होती हैं। इन को हटाया जा सकेगा। परन्तु मुसलमानों की मूर्तियां तीन मंजला मकानों से अधिक ऊँची हैं। प्रश्न यह है कि वह कैसे हट सकेगी।

(२०)

फर्रुखाबाद की घटना है कि स्वामी जी महाराज बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत दे रहे थे। उन दिनों में शुक्र देवता अस्त थे। एक पंडित जी ने स्वामी जी से कहा—महाराज! आजकल शुक्र अस्त हैं। इस कारण यज्ञोपवीत कराना निषिद्ध है।

स्वामी जी बोले—हमारा शुक्र अस्त नहीं हुआ है। हम तो अवश्य करायेंगे।

(२१)

कुछ मनुष्यों ने सोचा कि स्वामी जी सब को मुँह तोड़ उत्तर दिया करते हैं। अतः कोई बात ऐसी पूछनी चाहिए कि स्वामी जी से उत्तर ही न बन पड़े। इस कारण यह निश्चय किया गया कि स्वामी जी से पूछा जाय कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी? यदि कहा—ज्ञानी हूँ तो कहा जावेगा कि आप अभिमानी हैं। यदि अज्ञानी होना स्वीकार किया तो कहा जावेगा जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो दूसरों को क्या ज्ञान दे सकते हैं?

निदान ऐसा सोच-विचार कर कुछ लोग स्वामी जी के पास पहुँचे और पूछ बैठे—महाराज आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

स्वामी जी—मैं कुछ बातों का ज्ञानी हूँ जैसे वेद, शास्त्र आदि विषयों में ज्ञानी हूँ। पर अरबी फारसी व अंग्रेजी आदि भाषाओं में अज्ञानी हूँ।

ऐसा उत्तर पाकर लोग चुप ही हो गये।

(२२)

एक बार एक पादरी साहब ने श्री स्वामी जी से कहा कि जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया* बिना अपने प्रतिनिधि वायसराय के भारत का शासन नहीं कर सकतीं उसी प्रकार परमेश्वर प्रभु ईसा मसीह के बिना मनुष्यों पर धार्मिक शासन व मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

श्री स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि उदाहरण ठीक नहीं है। महारानी विक्टोरिया एक देशी और अल्पज्ञ हैं। उन की तुलना ईश्वर से नहीं हो सकती। परमेश्वर सर्व व्यापक और सर्व शक्तिवान है। उसे किसी की सहायता न चाहिए। यदि वह भी माना जावे कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे तथापि यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उन की सुफारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दें। वह न्यायकारी है जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

(२३)

एक पादरी साहब ने श्री स्वामी जी से कहा कि देखिये—

---

*उस समय के भारत का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में था।

ईसाई धर्म कैसा अच्छा है। प्रभु मसीह सब का पाप स्वयं अपने ऊपर लेकर चले गये।

श्रीस्वामी जी ने उत्तर में कहा—पाप का प्रायश्चित् उस का फल भोगे बिना नहीं हो सकता। यह बात झूठी है कि ईसा सब का पाप अपने ऊपर लेकर चले गये। यह बात तो पापों को पोषक और आश्रयदाता है। लोग यह जानकर कि ईसा पर विश्वास लाने से ही उन के सब पाप दूर हो जांयगे, लोग पाप करने में अधिक प्रवृत्ति होंगे।

(२४)

श्री स्वामी जी से अनेक अवसरों पर कुछ लोगों ने कहा कि एक ही साथ एक बर्तन में खाने से प्रेम बढ़ता है किन्तु श्रीस्वामी जी ने इस बात को बुरा बतलाया क्योंकि ऐसा होने से कुछ बीमारियाँ एक से दूसरे को लग जाती हैं। इस के सिवा यह भी कहा कि यह बात ठीक नहीं कि एक साथ खाने से प्रेम बढ़ता है। यदि ऐसा होता तो मुसलमान आपस में क्यों विरोध रखते क्योंकि वह लोग एक दूसरे का जूँठा खाते हैं।

(२५)

श्री स्वामी जी के विरोधी कभी-कभी विचित्र लीला रचा करते थे। एक कवि महाशय ने एक लीला में एक आर्य को सूचक और श्री स्वामी जी उत्तरदाता को महर्षि के रूप में इस प्रकार वर्णन किया है :—

आर्य—तुम्हें बदनाम वह भगवन् सरे बाज़ार[1] करते हैं।
महर्षि—मुझे मशहूर करते हैं बहुत उपकार करते हैं॥
आर्य—चढ़ा कर एक गधे पर आदमी, मुँह कर दिया काला।
पुकारें नाम से भगवन् के, अत्याचार करते हैं॥
महर्षि—मुनव्वर[2] चांदसा[3] मुखड़ा तो है असली दयानन्द का।
वह मसनूई[4] दयानन्दों की मट्टी ख़ार[5] करते हैं॥
आर्य—उठा पत्थर वह मारें रूसियह[6] पर, और कहते हैं।
यह देखो किस तरह स्वामी का हम उपकार करते हैं॥
महर्षि—यही पत्थर था उनका इष्ट जो वह फेंकते हैं अब।
वह गोया[7] इस तरह से इष्ट का तिरस्कार करते हैं॥
आर्य—वह देते सैकड़ों ही गालियाँ हैं शोक भगवन् को।
वह दुर्वचनों की भगवत नाम पर बौछार करते हैं॥
महर्षि—जो दुर्वचनों का होगा खात्मा[8] शुभ वचन सीखेंगे।
उन्हें हम आप शिक्षा के लिये तैयार करते हैं॥
आर्य—तुम्हें वह नीच जाति से बता कर तालियाँ पीटें।
तुम्हारी जाति से नफ़रत[9] का वह इज़हार[10] करते हैं॥
महर्षि—मैं ब्राह्मण जन्म ही से था मुझे वह नीच कहते हैं।
जन्म से नीच हैं सारे वह ख़ुद प्रचार करते हैं॥
आर्य—तुम्हारे ज़ोर की शक्ति का वह ख़ाका[11] उड़ाते हैं।
वह देकर सांड से तश्बीह[12] वह धिक्कार करते हैं॥

---

१ खुल्लम खुल्ला, सब के सामने। २ रोशन, चमकता हुआ। ३ चन्द्रमा के समान। ४ बनावटी, नक़ली। ५ अपमान। ६ काला मुँह। ७ मानो, इस प्रकार। ८ अन्त। ९ घृणा। १० वर्णन, प्रगट। ११ हँसी। १२ उपमा, समानता।

महर्षि—हरि का शुक्र[१३] है सारे मेरी शक्ति के हैं क़ायल[१४]।
जता ब्रह्मचर्य की अजमत[१५],जगत उपकार करते हैं॥
आर्य—ज़बान[१६] को आपकी नश्तर कहें छोटे बड़े भगवन्।
बड़े ही क्रोध से वह लानतो[१७] फटकार करते हैं॥
महर्षि—जो कहते हैं बुरा है डाक्टर नश्तर[१८] चुभोने पर।
वह उसकी दयालुता का बाद में इकरार[१९] करते हैं॥
आर्य—ग़रज़[२०] भगवन् की निन्दा मूढ़ हर प्रकार करते हैं।
महर्षि—यह उनकी है दया वह दास का उद्धार करते हैं॥

---

१३ धन्यवाद। १४ मानने वाले। १५ बड़ाई। १६ जिह्वा, जीभ। १७ धिक्कार। १८ घाव चीरने की नोंकदार चीज़। १९ स्वीकार। २० फलतः।

दूसरा खण्ड

भूमिका

सत्यार्थ प्रकाश का पहिला संस्करण सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसमें केवल बारह समुल्लास थे। ईसाइयों से सम्बन्ध रखने वाला तेरहवाँ और मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाला चौदहवाँ समुल्लास उसमें नहीं था। परन्तु इस संस्करण के दसवें समुल्लास के अन्त में जो कुछ लिखा है उससे ज्ञात होता है कि श्री स्वामी जी ने ईसाई व मुसलमान मतों के विषय में लिखने का ख़्याल उस समय अथवा उससे पूर्व ही किया था।

सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण तथा इसके आधार वाले अन्य संस्करणों की जो भूमिका है उसमें भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ वि०* अंकित है। इससे स्पष्ट है कि इस संस्करण की सामग्री इस समय तैयार हो गई थी, परन्तु इसके प्रकाशित होने की नौबत (श्री स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात्) सन १८८४ ई० में आई थी। इसकी भूमिका के प्रारंभिक शब्दों से विदित होता है कि उक्त दोनों समुल्लास

---

* अर्थात् सितम्बर १९८२ ई०

प्रथम संस्करण में किसी कारण न छप सके थे क्योंकि श्री स्वामी जी ने लिखा है—

"अन्त्य के दो समुल्लास.....किसी कारण नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं।"

श्री स्वामी जी की मुठभेड़ ईसाई व मुसलमानों के साथ सन १८७५ ई० से बहुत पहले ही हो चुकी थी। उन के कार्य्य-काल में ईसाई व मुसलमान जो कुछ कर रहे थे और हिन्दुओं पर इन का जैसा प्रभाव था उन से वह भली भांति सचेत थे। दोनों धर्म के लोग जोरों के साथ हिन्दुओं पर अपना सिक्का जमा रहे थे। यही मूल कारण था कि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश द्वारा परिचित कराना अत्यावश्यक समझा था। * फलतः

---

* क्योंकि श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के बनाने के विषय में इसकी भूमिका में लिखा है—

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्ष-पाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने

दोनों धर्मों के विषय में जो कुछ थोड़ा सा उन्होंने लिखा था उस पर मैंने कुछ प्रकाश डालने का उद्योग किया है ताकि पाठक उक्त दोनों समुल्लासों से अधिक लाभ उठा सकें।

सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

प्रथम अध्याय

स्वामी दयानन्द और बाइबिल

सत्यार्थ प्रकाश के त्रयोदश (तेरहवें) समुल्लास में श्री स्वामी दयानन्द जी ने बाइबिल के विषय में जो कुछ लिखा है उससे पहले ही अनुभूमिका में यह कहा है—

"इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत हुये हैं जो कि इनके मत में बड़े बड़े पादरी हैं उन्होंने किये हैं उनमें से देव नागरी वा संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझको बाइबिल में बहुत सी शंका हुई है उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ (तेरहवें) समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी है।"

सबसे पहले अब यह जान लेना चाहिये कि श्री स्वामी जी महाराज के उक्त कथन में देवनागरी व संस्कृत के जिन भाषान्तरों का उल्लेख है निस्संदेह उनसे उन भाषान्तरों को ही समझना चाहिये जो कि प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा हुये हैं और जिनका प्रकाशन भी प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों की ही किसी संस्था द्वारा हुआ है।

हाँ, मैं अपने उक्त कथन के पक्ष में यह कह देना भी चाहता हूँ कि जो ईसाई रोमन कैथोलिक कहे जाते हैं और जिनकी ओर से भी भारत में बहुत सा काम हो रहा है उनके द्वारा बाइबिल का कोई भी भाषान्तर हिन्दी या संस्कृत में नहीं हुआ और इसके सिवा यह भी स्पष्ट है कि तेरहवें समुल्लास में बाइबिल के जो उद्धरण हैं वह उस देवनागरी

बाइबिल से मिलते हैं जो कि प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा अनुवादित हैं।

श्री स्वामी जी ने संस्कृत बाइबिल* को अवश्य देखा किन्तु मूल सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में ही लिखा इस कारण तेरहवें समुल्लास में प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा प्रकाशित हिन्दी बाइबिल के उद्धरण दिये। निदान इन बातों पर ध्यान पाठकों को भली भांति रखना चाहिये।

प्रोटेस्टेन्ट ईसाई सम्पूर्ण बाइबिल में कुल ६६ ग्रन्थ मानते हैं। जिनमें से निम्नलिखित केवल १४ ग्रन्थों पर श्री स्वामी जी की ओर से १३० समीक्षाएँ हैं :—

(१) उत्पत्ति
(२) यात्रा (निर्गमन)
(३) लयव्यवस्था
(४) गिन्ती (गणना)
(५) समुएल की दूसरी पुस्तक
(६) राजाओं की दूसरी पुस्तक
(७) काल समाचार की पहली पुस्तक
(८) ऐयुब की पुस्तक
(९) उपदेश की पुस्तक
(१०) मत्ती रचित इञ्जील
(११) मार्क रचित इञ्जील
(१२) लूक रचित इञ्जील

* संस्कृत में बाइबिल सन् १८२२ ई० में ही होगई थी। लेखक

(१३) योहन रचित सुसमाचार (इञ्जील)

(१४) योहन के प्रकाशित वाक्य

बाइबिल के दो प्रधान खण्ड हैं। एक पुराना नियम (Old Testament) दूसरा नया नियम (New Testament) अस्तु जो उक्त पहले नौ ग्रन्थ हैं वह पुराने नियम के हैं और बाक़ी पाँच ग्रन्थ नये नियम के हैं।

अब यह ध्यान रहे कि सत्यार्थ प्रकाश के जो उद्धरण हैं वह प्रत्येक हिन्दी बाइबिल में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि तेरहवें समुल्लास के आरम्भ में 'उत्पत्ति' (तौरेत) के आरम्भ से दो आयतों के यह शब्द उद्धृत हैं :—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल और सूनी थी ! और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था ॥ पर्व १। आयत १।२॥"

किन्तु ब्रिटिश ऐन्ड फारेन बाइबिल सोसाइटी इलाहाबाद द्वारा सन १९१३ ई० में प्रकाशित 'उत्पत्ति' के आरम्भ में उक्त दो आयतों के शब्द यह हैं :—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा । और पृथिवी सूनी और सुनसान पड़ी थी और गहिरे जल के ऊपर अन्धियारा था और परमेश्वर का आत्म जल के ऊपर मंडलाता था ।"

इलाहाबाद से ही 'धर्मशास्त्र का पुरानी वाचा नाम' के नाम से सन् १९०५ ई० की जो पुस्तक प्रकाशित है

उसके आरम्भ में उत्पत्ति की दो आयतों के शब्द इस प्रकार हैं :—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा, और पृथिवी यों ही सुनसान पड़ी थी और गहरे जल के ऊपर अंधियारा था और परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर ऊपर मंडलाता था।"

कलकत्ता चर्च मिशन छापाखाना की छपी हुई सन् १८३४ ई० की 'उत्पत्ति' में उक्त भाव इन शब्दों में हैं :—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव के ऊपर अंधियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।"

मत्ती रचित इञ्जील "नये नियम" में पहली पोथी है। तेरहवें समुल्लास में समीक्षा ६० इसके विषय में है और इस इञ्जील के आयत १८ पर्व १ के यह शब्द सत्यार्थ प्रकाश में मिलते हैं :—

"यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठा होने के पहले ही वह देख पड़ी की पवित्र आत्मा से गर्भवती है।"

किन्तु "नया नियम" जो इलाहाबाद से सन् १९३६ ई० का प्रकाशित है उसमें मत्ती रचित इञ्जील के पहले पर्व में आयत १८ के शब्द यह हैं :—

"यीशु मसीह का जन्म इस प्रकार से हुआ। जब उसकी माता मरियम की मंगनी यूसुफ से हुई तो उनके इकट्ठे होने से पहले पवित्र आत्मा की ओर से गर्भवती पाई गई।"

बैपटिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता से सन् १८६४ ई० का जो "नया नियम" प्रकाशित है उसमें उक्त आशय के शब्द यह हैं :—

"यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी उनके इकट्ठे होने के पहले वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है।"

परन्तु उक्त प्रेस से ही प्रकाशित "नया नियम" सन् १८४८ ई० में उक्त शब्द इस प्रकार मिलते हैं :—

"यीशु ख्रीष्ट के जन्म की बात यही है। उसकी माता मरियम युसुफ से बचनदत्त हुई, दोनों के इकट्ठे होने के पहले मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती पाई गई।"

अब प्रश्न यह उठता है कि पाठ भेद क्यों हैं ? एक कारण कुछ अंश तक यह है कि बाइबिल के अनेक खण्डों के अनुवाद कई प्रकार की हिन्दी—अवधी, बघेली, ब्रजभाषा छत्तीसगढ़ी, दक्खिनी और कन्नौजी में हुए हैं किन्तु मूल बात यह है कि हिन्दी अनुवादों का समय समय पर सन्शोधन हुआ। इस विषय में छानबीन करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ :—

"नया नियम" या "पुराना नियम" अथवा पूर्ण बाइबिल के जो हिन्दी संस्करण सन् १८७४ ई० और सन् १८९९ ई० अथवा इन सालों के बीच के है उनका पाठ सत्यार्थ प्रकाश के तेरहवें समुल्लास के उद्धृत पाठों से मिलता है।

द्वितीय अध्याय

स्वामी दयानन्द और कुरान

समस्त मुसलमानों की दृष्टि में परम माननीय धर्म ग्रन्थ 'कुरान' है जिसे 'कुरान शरीफ' 'कुरान मजीद' या 'कलामुल्लाह आदि भी कहा जाता है। यही मूल कारण है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में केवल इसी ग्रन्थ की बाबत कुछ लिखा है। अतः जो कुछ उन्होंने लिखा है उसी के विषय में कुछ बातें बतलाई जा रही हैं।

चौदहवें समुल्लास के आरंभ में जो पहली समीक्षा है उसके हवाले के निमित्त 'मंजिल', 'सिपारा' व 'सूरत' शब्द का प्रयोग है। 'आयत' शब्द का प्रयोग वहाँ नहीं है क्योंकि इस शब्द की वहां आवश्यकता न थी। इस समीक्षा के पश्चात् संकेत के रूप में प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर दिये गये हैं। मैं इस सम्बन्ध में पाठकों को पहले कुछ बतला देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) कुरान जिन ढङ्गों पर विभक्त किया गया है उनमें से एक ढंग मंजिल के अनुसार है। कुल सात मंजिलें समस्त कुरान में मानी गई हैं ताकि जो लोग कुरान का पाठ सात दिन में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त एक चिन्ह रहे कि अमुक स्थान तक प्रतिदिन पढ़ना चाहिये। मंजिल शब्द का अर्थ है—उतरने का स्थान, ठहरने का पड़ाव। यह शब्द

द्वितीय अध्याय

स्वामी दयानन्द और कुरान

समस्त मुसलमानों की दृष्टि में परम माननीय धर्म ग्रन्थ 'कुरान' है जिसे 'कुरान शरीफ' 'कुरान मजीद' या 'कलामुल्लाह आदि भी कहा जाता है। यही मूल कारण है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में केवल इसी ग्रन्थ की बाबत कुछ लिखा है। अतः जो कुछ उन्होंने लिखा है उसी के विषय में कुछ बातें बतलाई जा रही हैं।

चौदहवें समुल्लास के आरंभ में जो पहली समीक्षा है उसके हवाले के निमित्त 'मंजिल', 'सिपारा' व 'सूरत' शब्द का प्रयोग है। 'आयत' शब्द का प्रयोग वहाँ नहीं है क्योंकि इस शब्द की वहां आवश्यकता न थी। इस समीक्षा के पश्चात् संकेत के रूप में प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर दिये गये हैं। मैं इस सम्बन्ध में पाठकों को पहले कुछ बतला देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) कुरान जिन ढङ्गों पर विभक्त किया गया है उनमें से एक ढंग मंजिल के अनुसार है। कुल सात मंजिलें समस्त कुरान में मानी गई हैं ताकि जो लोग कुरान का पाठ सात दिन में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त एक चिन्ह रहे कि अमुक स्थान तक प्रतिदिन पढ़ना चाहिये। मंजिल शब्द का अर्थ है—उतरने का स्थान, ठहरने का पड़ाव। यह शब्द

अरबी भाषा का है। इसके निमित्त 'मंडल' शब्द प्रयोग किया जा सकता है।

(२) 'पारा' शब्द फारसी का है। इसी के निमित्त 'सिपारा' शब्द भी बोला जाता है। पारा का अर्थ है—टुकड़ा। इस रीति से सम्पूर्ण कुरान ३० भागों में है ताकि जो लोग समस्त कुरान को एक मास अर्थात् तीस दिनों में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त प्रतिदिन का खण्ड स्पष्ट रहे।

(३) सूरत या सूरः के विचार से कुरान में ११४ खण्ड हैं किन्तु कोई सूरत बड़ी है और कोई छोटी। सूरत बकर में ढाई पारे आ जाते हैं और अन्तिम पारे में अनेक सूरत हैं। सुरत का अर्थ—श्रेष्ठता भी है। यह अरबी भाषा का ही शब्द है।

(४) आयत का अर्थ है—चिन्ह। मंजिल व सूरत के समान यह भी अरबी भाषा का शब्द है। आयत भी कोई छोटी है कोई बड़ी। हिन्दी में इसके लिये वाक्य या अंश प्रयोग किया जाय तो अनुचित नहीं। हाँ, यह भी स्पष्ट रहे कि आयतों की गणना केवल सूरत (सूरः) की ही दृष्टि में रख कर की जाती है क्योंकि सूरत का पद मंजिल व पारः से श्रेष्ठ माना जाता है।

मैंने मिश्र देश (Egypt) के छपे हुये कुरानों का एक ऐसा संस्करण लिया जिसमें प्रत्येक आयत की संख्या पृथक पृथक अंकित है। इसके साथ ही एक ऐसा ही भारतीय संस्करण लिया। दोनों में आयतों की संख्या का अंक एक ही मिला। परन्तु, मैंने देखा कि चौदहवें समुल्लास की

अनेक समीक्षाओं में जो आशय अनेक आयतों के दिये गये हैं उन आशयों या अर्थों वाली आयतों की संख्या जो कुछ वहां बतलाई गई है वह संख्या उन आयतों के निमित्त मिश्री व भारतीय संस्करणों में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि समीक्षा १३ में आयत का अंक ४६ अंकित है किन्तु भारतीय व मिश्री दोनों संस्करणों के अनुसार आयत का अंक ४८ ठहरता है। इसी प्रकार अनेक समीक्षाओं की आयतों के अंकों में कुछ न कुछ भेद अवश्य है।

चौदहवां समुल्लास पहले पहल सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण (सन १८८४ ई०) में छपा है। इस संस्करण के आरंभ व तीसरे संस्करण के आरम्भ में यह सूचना* (प्रेस के प्रबन्ध-कर्ता की ओर से) छपी हुई मिलती है—

"चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मंजिल, सिपारा सूरत और आयत का ब्योरा लिखा है उस में और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें।"

इससे प्रगट होता है कि आयतों की संख्या विषयक अशुद्धि का अनुभव कुछ न कुछ अवश्य हुआ था।

---

* संभव है कि उक्त संस्करणों के सिवा किसी अन्य में भी छपी हों किन्तु मेरी दृष्टि में केवल यही दो पुराने संस्करण आये हैं। अनेक संस्करणों में इस सूचना का अभाव अवश्य है। लेखक

ऐसी अशुद्धि क्यों हुई थी। वास्तविक बात यह है कि बीसवीं शताब्दी में जो कुरान छप रहे हैं उन में से अनेक में (सब में नहीं) प्रत्येक आयत की संख्या उस आयत के साथ ही लिख दी गई है। इस से पहले अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के छपे हुये कुरानों में शायद ही कोई ऐसा संस्करण हो जिस में प्रत्येक आयत की संख्या साथ ही साथ दिखलाई गई हो। अस्तु चौदहवें समुल्लास की समीक्षाओं में आयतों की जो संख्या दी गई वह वर्त्तमान काल के अनेक संस्करणों की संख्या से भिन्न ठहरती है। इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि आयतों की संख्या निश्चित करने में कहीं कहीं 'बिस्मिल्ला हिर् रहिमानिर् रहीम' को एक आयत समझ लिया गया है अथवा ऐसा न समझा गया होगा।

दूसरी बात यह स्पष्ट रहे कि श्री स्वामी जी स्वयं अरबी न जानते थे। उन्होंने कुरान के विषय में जो कुछ किया है वह सब दूसरे लोगों की सहायता से किया है। फलतः जिस अथवा जिन के द्वारा कुरान के आयतों की संख्या उनको मालूम हुई है उस अथवा उनसे आयत की संख्या निश्चित करने अथवा बतलाने में भूल हुई है। यही कारण है कि अनेक संख्यायें समीक्षाओं में ऐसी हैं कि वह ठीक ठीक नहीं उतर रही हैं।

इसी सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि कहीं कहीं समीक्षाओं में आयत का कोई कोई अंक छूट गया है। जैसा कि समीक्षा १४ में वास्तव में तीन संख्याओं का होना आवश्यक है। परन्तु एक ही नहीं बल्कि सत्यार्थ प्रकाश के

अनेक हिन्दी संस्करणों को भी मैंने देखा है। सभों में आयत सम्बन्धी केवल ५० व ६१ अंक हैं। इन अंकों के अनुसार ६२ का अंक होना भी आवश्यक था।

कुरान में कुल ११४ सूरतें (भाग) हैं। इन में से ६२ सूरतों की आयतों (अंशों) पर श्री स्वामी जी की ओर से १५६ समीक्षायें हैं। परन्तु प्रत्येक समीक्षा के अन्तर्गत एक ही आयत नहीं है बल्कि किसी किसी समीक्षा में कई आयतें एकत्र हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि समीक्षा नम्बर २ में दो आयतें एक साथ की हैं और नम्बर ३ में तीन आयतें एक साथ की ही हैं। परन्तु एक साथ के सिवा दूर की आयतें भी एक ही नम्बर में पड़ गई हैं। क्योंकि समीक्षा नम्बर १४ में सूरत बकर की आयत* ५३ और ६५ का खण्ड व ६६ (पूरी) एकत्र हैं।

हां यह भी ध्यान रहे कि समीक्षा नम्बर २२ व २३ की आयतें वास्तव में समीक्षा १४ की एकत्र आयतों के बीच में ५८ व ६० नम्बर की आयतें क्रमानुसार हैं। उन्हीं के खण्ड २२ व २३ नम्बर की समीक्षायें हैं। अतः फिर बतला देता हूँ कि जिन समीक्षाओं में एक से अधिक आयतें हैं उनमें :—

(क) पूरी पूरी आयतें एक साथ की ही हैं या—

---

* ५३,६५ और ६६ की संख्यायें वास्तव में मिश्री व भारतीय संस्करणों के अनुसार हैं। समीक्षा में इन के बदले केवल ५० व ६१ अंक है। एक छूटा हुआ है जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है।

(ख) पूरी आयत व किसी एक आयत तथा अनेक आयतों के खण्ड एक साथ हैं। और किसी समीक्षा में ऐसा एकत्र होना कहीं कहीं तो निकट की आयतों का है और कहीं कहीं दूर दूर की आयतों का है। यही कारण है कि किसी किसी समीक्षा में जो अर्थ व भाव हैं वह एक ही कम में नहीं हैं। भाव असंगत हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि समीक्षा नम्बर १४ के शब्द हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में यह हैं :—

"हमने मूसा को किताब और मोजिजे दिये। हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को ॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५०। ६१ ॥"

इसमें वास्तव में सूरत बक़र की आयत नम्बर ५३ व नम्बर ६५ के अंश और नम्बर ६६ की पूरी आयत का भाव है जो इस रूप में हैं :—

(१) हमने मूसा को किताब और मोजिजे दिये। (आयत ५३ का खण्ड)

(२) हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। (आयत ६५ का खण्ड)

(३) यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको, और शिक्षा ईमानदारों को। (आयत ६६ पूरी)

निदान जो लोग चौदहवें समुल्लास से लाभ उठाना चाहें उनको काफी सावधानी से काम लेना चाहिये।

'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' इस नाम से जो पुस्तकें चार भागों में निकली हैं उनके द्वितीय भाग में दीनापुर के बाबू माधो लाल जी के नाम जो पत्र हैं उनमें से एक पत्र २४ अप्रैल सन् १८७६ ई० का श्री स्वामी जी की ओर से अँग्रेजी में है। उसी में है :—

The "Koran" in Nagri is entirely ready but has not been printed yet.

अर्थ—कुरान नागरी में पूरा तैयार है परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।*

उक्त शब्दों से यह प्रगट होता है कि सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में कुरान की बाबत जो कुछ श्री स्वामी जी महाराज ने लिखा है उसे सन् १८७६ ई० के आस-पास में अथवा इस समय के कुछ ही समय बाद लिखा है। यही मूल कारण है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में कुरान की बाबत कुछ नहीं छप सका था।

श्री स्वामी जी महाराज ने जो कुछ चौदहवें समुल्लास में लिखा उसमें कुरान की ही बाबत क्यों लिखा? कारण

---

* मुझे पता लगा है कि अजमेर में जहाँ श्री स्वामी जी की पुस्तकें सुरक्षित हैं वहाँ हिन्दी कुरान की एक हस्त लिखित प्रति भी है। अनुमान कहता है कि वह प्रति वही है जिसका उल्लेख पत्र में ऊपर किया गया है। ज्ञात रहे कि अब तो हिन्दी में कई व्यक्तियों द्वारा पूर्ण कुरान हो गये हैं किन्तु इससे पूर्व पूर्ण या अपूर्ण कुरान हिन्दी में कोई न था। उर्दू में पूर्ण कुरान केवल दो ही थे।

यह है कि यही एक ऐसा धर्म ग्रन्थ है कि जिसको सब मुसलमान मानते हैं। अस्तु सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है :—

"चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत विषय में लिखा है ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं।"

इसके सिवा चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में है:— "जो यह चौदहवाँ समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा पूरा विश्वास रखते हैं, यद्यपि फिरक़े होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि के विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब एक मत है।"

अब यह ज्ञात रहे कि कुरान की आयतों (अंशों) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ आजकल के अनेक अनुवादकों के अर्थों से कहीं कहीं भिन्न है। मूल कारण यह है कि आज समय बदला हुआ है। अनेक अर्थ काल को दृष्टि में रख कर किये गये हैं ताकि शंकायें न उत्पन्न हों।

बीसवीं शताब्दी ई० में कुरान के जो अनुवाद उर्दू में हुये हैं उनकी भाषा में अरबी व फारसी के शब्द अधिक हैं किन्तु जो अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी के हैं उनकी भाषा सरल है।

यहाँ पर उन उर्दू अनुवादों* का परिचय कराना आवश्यक समझता हूँ जो कि श्री स्वामी जी के उक्त हिन्दी कुरान से पहिले हुये हैं और उस समय में प्रचलित थे। उनकी भाषा श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। ऐसे अनुवादों से प्रगट हो जायगा कि अनुवाद की जो शैली बीसवीं शताब्दी के पहले की और जो अर्थ का भाव किसी आयत का उन अनुवादों में माना गया है उसी के अनुकूल श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थ चौदहवें समुल्लास में भी हैं। यदि समय के बदलने पर कुरान का अर्थ अब दूसरे ढङ्ग पर हो और वह श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थों से अथवा उनके पूर्व के अर्थों से न मिले तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। समय की गति और उसकी दशा विचित्र हुआ करती है।

(१) मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब

मौलाना शाह वली उल्ला के यह दूसरे पुत्र थे। पिता ने कुरान का अनुवाद फारसी में किया था। उन्होंने उर्दू में किया है।

यह सन् ११६३ हिजरी (सन् १७४९ या १७५० ई०) में पैदा हुये थे। देहान्त सन् १२३३ हिजरी अर्थात् सन् १८१७ या १८१८ ई० में हुआ था। इनका अनुवाद यद्यपि काफी

---

* इन उर्दू अनुवादों की उर्दू और साधारण हिन्दी में बहुत ज्यादा अन्तर आज बीसवीं शताब्दी की उर्दू व हिन्दी के समान नहीं है। अस्तु इस बात का पता आगे चल कर लग जायगा। लेखक

समय पूर्व का हो चुका है तथापि अनेक उर्दू अनुवादों की उपस्थिति में भी आज बीसवीं शताब्दी में काफी छपता तथा बिकता है।

मोजिज़ नुमा मुतवस्सित कुरान शरीफ मुतरजम बदो तरजमः (معجز نما متوسط قرآن شریف مترجم بدو ترجمہ) के नाम से मूल कुरान दो अर्थों व टीका सहित आकार १०×६½ इंच नूरमुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब क़रीब जामा मसजिद दिल्ली की ओर से सन् १३४५ हिजरी (सन् १९२७ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इस में मूल के नीचे प्रथम अर्थ (अनुवाद) मौलाना शाह रफीउद्दीन का है और दूसरा मौलाना अशरफ अली साहब का है। फलतः इसी संस्करण के शब्द आगे चल कर उद्धृत किये जायेंगे और इसी के पृष्ठ का उल्लेख किया जायगा।

(२) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब

मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब के यह सगे छोटे भाई थे। सन् ११६७ हिजरी (सन् १७५३ या १७५४ ई०) में पैदा हुये थे। देहान्त का समय ९ रजब सन् १२४३ हिजरी* अर्थात् सन् १८२८ ई० है। इन के द्वारा जो उर्दू अनुवाद हुआ है वह भी आज काफी खपता है।

ग्यारहवीं बार मुंशी नवल किशोर के प्रेस लखनऊ से सन् दिसम्बर १९२६ ई० में एक कुरान १२×८ इंच के आकार मे छपा है। उस के किनारे किनारे मौलाना का किया हुआ

* कहीं कहीं सन् १२३० हिजरी लिखा हुआ है।

अनुवाद छपा है। इसी संस्करण के शब्द आगे चल कर उद्धृत किये जायंगे और इसी संस्करण के पृष्ठ का उल्लेख किया जायगा।

ध्यान रहे

१—उक्त अनुवादों के जो अन्य संस्करण मिलते हैं उन से भी यदि कोई व्यक्ति आयतों के उन अर्थों का मुकाबिला करे जो कि सत्यार्थ प्रकाश में दिये गये हैं तो कोई हर्ज नहीं।

२—उक्त दोनों अनुवादों के सिवा कुछ अपूर्ण अनुवाद व भाष्य उर्दू में सन् १८७६ ई० तक और हुये थे। यदि उन से लाभ उठाया गया होगा तो बहुत कम। वास्तव में उक्त दोनों से ही लाभ उठाया गया है जैसा कि आगे चल कर ज्ञात होगा कि इन से ही सत्यार्थ प्रकाश के शब्द व भाव बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

श्री स्वामी जी महाराज स्वयं अरबी न जानते थे। कुरान हिन्दी में अन्य लोगों के कारण हुआ था और तब उन्होंने उसके सहारे चौदहवें समुल्लास को लिखा। इसी कारण उन्होंने उक्त समुल्लास की अनुभूमिका में कहा है :—

"जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देव नागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के पश्चात् अर्बी के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे।"

सन् १८७६ ई० के पहले मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब व मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब के द्वारा ही सम्पूर्ण कुरान के अनुवाद (अर्थ) उर्दू में हुये हैं। इन्हीं की ओर संकेत लागू होता है। इन दोनों महाशयों का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अब नमूने के रूप में यह दिखलाया जायगा कि किसी आयत अर्थात् अंश (आयत) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ उक्त दोनों महाशयों से कितना मिलता जुलता है। नमूने के रूप में ५ समीक्षाओं का उल्लेख नीचे किया जारहा है।

(१)

सं० १—आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु। मं० १। सि० १। सू० १।

(क) शुरू करता हूँ मैं साथ नाम अल्लाह बखशिश करने वाले मेहरबान के।

(मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब—पृष्ठ २)

(ख) शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान निहायत रहम वाला।

(मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब—पृष्ठ २)

ध्यान रहे कि दोनों मौलानाओं के जिन संस्करणों का उल्लेख पहले किया गया है उन्हीं के पृष्ठों का अंक दिया गया है। परन्तु मं०, सि०, आदि के अनुसार जो पता आयत का दिया गया है उसके द्वारा अन्य संस्करणों से भी मिलान किया जा सकता है और अन्य लोगों के अनुवाद भी देखे जा सकते हैं।

(२)

सं. ७५—अल्लाह ने उनके दिलों कानों पर मोहर कर दी और उनकी आँखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६।†

(क) मोहर की अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के और ऊपर कानों उनके के और ऊपर उनकी आँख के पर्दा है और वास्ते उनके अज़ाब है बड़ा।

(मौ० शाह रफीउद्दीन साहब—पृष्ठ ४)

(ख) मोहर करदी अल्लाह ने उनके दिल पर और उनके कान पर और उनकी आँखों पर है पर्दा और उनको बड़ी मार है।

(मौ० शा० अब्दुल क़ादिर साहब—पृष्ठ ४)

(३)

१०६—क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों का ऊपर काफिरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर।

मं० ४। सि० १६। सू० १६। आ० ८१।

(क) क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफिरों के बिदकाते हैं उनको बिदकाना कर।

(मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ४४०)

---

७५ समीक्षा ५ का केवल अन्तिम अंश लिखा गया है।

† आयत की संख्या में कहीं कहीं भेद है। इसकी बाबत लिखा जा चुका है।

(ख) तूने नहीं देखा कि हमने छोड़ रक्खे हैं शैतान मुनकिरों पर उछालते हैं उनको उभार कर।

(मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ३१२)

(४)

सं. *१२६—कहा कि कभी न लाभ देगा भागना तुझको जो भागो तुम मृत्यु या क़तल से।

मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६।

(क) कहा कि हरगिज़ न फायदा देगा तुमको भागना अगर भागो तुम मौत से या कतल से।

(मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ५९२)

(ख) तू कह कि काम न आवेगा तुमको भागना अगर भागोगे मरने से मारे जाने से।

(मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ४२१)

(५)

सं. १५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर॥

मं० ७। सि० ३०। सूरत ८६। आ० १५, १६॥

(क) तहकीक़ वह मकर करते हैं एक मकर और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर।

(मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ८३१)

(ख) अलबत्तः वह लगे हैं एक दाव करने में और मैं लगा हूँ एक दाव करने में।

(मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ५९६)

---

* १२६ का केवल पहला अंश दिया गया है।

हां यह भी बतला देना उचित समझता हूँ कि कहीं कहीं शब्द इधर उधर गड़बड़ छपे हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिए—

(१) अंक ८ के अन्त में यह शब्द सत्यार्थ प्रकाश के समस्त संस्करणों में हैं—

उस आग से डरो कि जिस का इन्धन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।

इस इबारत में पत्थर शब्द के ठीक स्थान पर न होने से क्रिया भी बदल गई है। वास्तव में उक्त इबारत इस प्रकार होनी चाहिए—

उस आग से डरो कि जिस का इन्धन मनुष्य है और पत्थर काफिरों के वास्ते तैयार की गई है।

(२) अंक ११ में है—

"बाबा आदम को दण्डवत करो देखा सभों ने—इत्यादि उक्त इबारत में 'देखा' शब्द ठीक नहीं। इस के बदले में 'पस' 'अस्तु' अथवा 'अतः' होना चाहिए।

अब यह भी स्पष्ट रहे कि चौदहवें समुल्लास के अन्तिम भाग में कुछ अन्य बातें भी मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली हैं उन से भी हमारी जानकारी में अच्छा लाभ हो सकता है।

परिशिष्ट (१)

कुछ तिथियाँ

सम्वत् १८८१ वि० (सन् १८२४ ई०) को श्री स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ।

सम्वत् १८९४ वि० माघ वदी १४ (शिवरात्रि) (सन् १९३८ ई०) को मूर्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा हुई।

सम्वत् १८९६ वि० में छोटी बहिन का देहान्त हुआ।

सम्वत् १८९९ वि० में चचा की मृत्यु हुई।

सम्वत् १९०१ वि० में घर छोड़ा। सम्वत् १९०३ वि० में अन्तिम बार घर छोड़ा। संन्यास ग्रहण करके 'दयानन्द' नाम धारण किया।

सम्वत् १९१७ वि० में श्री स्वामी विरजानन्द जी की सेवा में मथुरा पहुँचे।

सम्वत् १९२० वि० वैशाख मास (अप्रैल सन् १८६३ ई०) से प्रचार कार्य आरम्भ किया।

सम्वत् १९२३ वि० फाल्गुन शुक्ल १ को हरिद्वार के कुम्भ-मेले पर पहुँचे और फिर 'पाखण्ड-खण्डनी पताका' गाड़ी।

सम्वत् १९२६ वि० कार्तिक सुदी १२ मंगल (१६ नवम्बर सन् १८६९ ई०) को काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'प्रतिमा पूजा विचार' पर हुआ।

सम्वत् १९२९ वि० पौष वदी २ (१६ दिसम्बर सन् १८७२ ई०) को कलकत्ता पहुँचे।

फाल्गुन बदी १० (२३ फरवरी सन् १८७३) के व्याख्यान का अनुवाद कलकत्ता में जनता के सम्मुख अनुवादक ने अशुद्ध पेश किया।

सम्वत् १९३० वि० चैत सुदी एकादशी (८ अप्रैल सन् १८७३ ई०) को पण्डित ताराचरण जी के साथ हुगली में शास्त्रार्थ हुआ।

सम्वत् १९३० वि० पौष कृष्ण २ शनिवार (६ दिसम्बर सन् १८७३ ई०) को काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोली गई थी।

सम्वत् १९३१ वि० के ज्येष्ठ (अर्थात् सन् १८७४ ई० में मई मास) की किसी तारीख़ को हिन्दी में सब से पहिला व्याख्यान काशी में दिया था।

कार्तिक बदी १५ अर्थात् अमावस्या (९ नवम्बर सन् १८७४ ई०) मंगल को 'वेदविरुद्ध मत खण्डन' की रचना (संस्कृत में) समाप्त हुई।

पौष बदी एकादशी (३ जनवरी सन् १८७५ ई०) रविवार को 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' की रचना (संस्कृत में) समाप्त हुई।

सम्वत् १९३२ वि० चैत्र शुक्ल १ बुधवार (७ अप्रैल सन् १८७५ ई०) को बम्बई में आर्य समाज सब से पहले स्थापित हुआ और आर्य समाज के नियम बने जो संख्या व विस्तार में दस से अधिक थे।

कार्तिक बदी ३० अर्थात् अमावस्या (३० अक्टूबर सन् १८७५ ई०) शनिवार को 'संस्कार विधि' प्रथम संस्करण का लिखा जाना आरम्भ हुआ था।

भादों सुदी प्रतिपदा (२० अगस्त सन् १८७६ ई०) रविवार को 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' का कार्य आरम्भ हुआ।

इस सम्वत् के अन्तिम अर्थात् सन् १८७७ ई० के प्रारम्भिक काल में 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' की छपाई आरम्भ हुई।

सम्वत् १९३४ वि० ज्येष्ठ (अधिक) शुक्ल १३ रविवार (२४ जून सन् १८७७ ई०) को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई और आर्य समाज के प्रचलित दस नियम इसी अवसर पर बने।

श्रावण सुदी सप्तमी (१५ अगस्त सन् १८७७ ई०) बुधवार को 'आर्य्योद्देश्य रत्नमाला' की रचना समाप्त हुई।

कार्तिक शुक्ल २ (७ नवम्बर १८७७ ई०) बुधवार को 'भ्रान्ति-निवारण' की रचना समाप्त हुई।

भौमवार मार्गशुक्ल ६ सम्वत् १९३४ वि० (११ दिसम्बर सन् १८७७ ई०) को 'ऋग्वेद भाष्य' का कार्य आरंभ हुआ।

पौष सुदी १३ (१७ जनवरी सन् १८७८ ई०) गुरुवार को 'यजुर्वेद भाष्य' का कार्य आरंभ हुआ।

सम्वत १९३५ वि० में 'ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य' की छपाई आरंभ हुई।

सम्वत् १९३६ वि० माघ शुक्ल २ बृहस्पतिवार (अर्थात् १२ फरवरी सन् १८८० ई०) को काशी में वैदिक यन्त्रालय स्थापित हुआ था जो कि बाद को सन् १८८१ ई० में प्रयाग और फिर सन् १८९१ ई० में अजमेर में पहुंचा जहां कि अब भी है।

शनिवार माघ सुदी ४ (१४ फरवरी सन् १८८० ई०) को 'वर्णोच्चारण शिक्षा' (वेदाङ्ग प्रकाश का प्रथम अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

'संस्कृत वाक्य प्रबोध' (वेदाङ्ग प्रकाश का द्वितीय अङ्ग) रचा गया।

शुक्रवार फाल्गुन सुदी १५ (२६ मार्च १८८० ई०) को 'व्यवहार भानु' (वेदाङ्ग प्रकाश के तीसरे अङ्ग) की रचना हुई।

सम्वत् १९३७ वि० ज्येष्ठ बदी २ (२७ मई सन् १८८० ई०) बृहस्पतिवार को 'भ्रमोच्छेदन' की रचना समाप्त हुई।

भाद्र सुदी ८ (१२ सितम्बर सन् १८८० ई०) रविवार को यजुर्वेद के सातवें अध्याय के मन्त्रों का भाष्य किया जा रहा था।

फाल्गुन बदी १० (२४ फरवरी सन् १८८१ ई०) गुरुवार को 'गोकरुणानिधि' की रचना समाप्त हुई।

'सन्धि विषय' (वेदाङ्ग प्रकाश के चौथे अङ्ग) की रचना हुई।

सम्वत् १९३८ वि० चैत सुदी १४ बुधवार (१३ अप्रैल १८८१ ई०) को 'नामिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के पांचवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार भाद्र बदी ८ (१७ अगस्त १८८१ ई०) को 'कारकीय' (वेदाङ्ग प्रकाश के छठे अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

रविवार भाद्र शुक्ल १२ (५ सितम्बर १८८१ ई०) को 'सामासिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के सातवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

शनिवार अगहन शुक्ल ५ (२६ नवम्बर १८८१ ई०) को 'स्त्रैयताद्धित' (वेदाङ्ग प्रकाश के आठवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

'अव्ययार्थ' (वेदाङ्ग प्रकाश के नवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

सम्वत् १९३९ वि० में 'आख्यातिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के दसवें अङ्ग) की रचना हुई।

चन्द्रवार भाद्रशुक्ल १३ (२५ सितम्बर सन् १८८२ ई०) को 'सौवर' (वेदाङ्ग प्रकाश के ग्यारहवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

आश्विन शुक्ल (अक्टूबर सन् १८८२ ई०) में 'पारिभाषिक' (वेदाङ्ग प्रकाश का बारहवां अङ्ग) रचा गया।

शनिवार अगहन सुदी १ (२६ नवम्बर सन् १८८२ ई०) को 'यजुर्वेद भाष्य' की रचना समाप्त हुई।

गुरुवार अगहन शुक्ल ४ (१४ दिसम्बर सन् १८८२ ई०) को 'निघण्टु' (वेदाङ्ग प्रकाश का सोलहवां अङ्ग) संशोधित होकर सम्पादित हुआ।

गुरुवार पौष बदी १० (३ जनवरी १८८३ ई०) को 'धातुपाठ' (वेदाङ्ग प्रकाश के तेरहवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार माघ बदी १ (२४ जनवरी सन् १८८३ ई०) को 'उणादि कोष' (वेदाङ्ग प्रकाश का पन्द्रहवा अङ्ग) तैयार हुआ।

शुक्रवार माघ शुक्ल १० (१६ फरवरी सन् १८८३ ई०) को 'गणपाठ' (वेदाङ्ग प्रकाश का चौदहवां अङ्ग) तैयार हुआ।

सम्वत् १९३९ वि० फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार (२७ फरवरी सन् १८८३ ई०) को उदयपुर में 'स्वीकार पत्र' लिखा गया अर्थात् 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना हुई।

सम्वत् १९४० वि० आषाढ़ बदी १३ (१ जुलाई सन् १८८३ ई०) रविवार को 'संस्कार विधि' के दूसरे अर्थात् संशोधित संस्करण के तैयार करने के लिये विचार हुआ।

आश्विन बदी १३ (२९ सितम्बर सन् १८८३ ई०) को (अन्तिम बार) जोधपुर में रात के समय विष दिया गया।

दीपावली (कार्तिक की अमावस्या) मंगलवार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ६ बजे के लगभग सायंकाल के समय अजमेर में स्वर्ग लोक को सिधारे।

श्रीमद्-दयानन्द-भ्रमण

१.—इस में उन स्थानों का वर्णन है जो श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा गौरवान्वित हुये हैं। बतलाया गया है कि प्रत्येक ऐसा स्थान कहाँ है और किसी मुख्य स्थान से किस ओर तथा कितनी दूरी पर है।

२.—किसी स्थान में एक (या अनेक) बार कब पधारे।

३.—कब कहाँ से प्रस्थान किया।

४—इस प्रकार के स्थानों में यदि रेल-मार्ग चालू हुआ तो कब।

५.—जिन स्थानों के नाम अनेक जीवन-चरित्र में अशुद्ध छपे हैं उनको ठीक ठीक लिखा गया है।

६.—इस में एक ऐसा नक्शा भी रहेगा जिससे महर्षि के पदारोपित स्थानों का ज्ञान बहुत ही सुगमता के साथ जल्द हो सकेगा।

निदान अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के लेखक ही इस अपूर्व पुस्तक के कर्त्ता धर्त्ता हैं।

१५-११-१९४१

मैनेजर आलिम फ़ाज़िल बुकडिपो

मुहतशिम गंज, इलाहाबाद सिटी

Printed by Vishwa Prakash at the Kala Press, Allahabad.

* ओ३म् *

वैदिक धर्म प्रचार प्रकाशन मण्डल का चतुर्थ पुष्प

कुम्भ मेला प्रयाग सं० २०२२ का अनुपम प्रशाद—

हमारा सच्चा सुधारक

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज

लेखक—

श्री पं० मुनीश्वरदेव जी सिद्धान्त शिरोमणि

———

प्रकाशक—

स्वामी अभयानन्द सरस्वती

अध्यक्ष:-आर्य्य साधु आश्रम वेद मन्दिर-ब्रह्मचर्यालय

पो० लाडवा (करनाल)

उपकार्यालय:-सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासी वान प्रस्थ मण्डल

ज्वालापुर (जिलासहारनपुर)

तृतीय बार २०००

दान केवल पन्द्रा पैसे १५